Certificate of Completion

Ministry of Education

This is to certify that

KASHIRA JAHAN,

Assistant Professor, R.G.Baruah College

has successfully completed the **Online Weeklong Faculty Development Program on Academic Writing and Publication** organized by Teaching Learning Centre, Tezpur University in association with Doomdooma College, Tinsukia and Raha College, Nagaon during **10-16 May 2023.**

This program is to be considered for fulfillment of the requirements as laid down in Career Advancement Scheme [Clause 18.0 (ix)] of UGC Regulations on Minimum Qualifications for Appointment of Teachers and other Academic Staff in Universities and Colleges and Measures for the Maintenance of Standards in Higher Education, 2018.

Certificate Reference No:
TLC/TU/FDP2023-NEP/244

(Prof. Subhrangshu Sekhar Sarkar)
Director
Teaching Learning Centre

(Dr. Biren Das)
Registrar
Tezpur University

To verify the participant details please visit nmtt.gov.in. or scan the given QR code for direct link

Teaching Learning Centre, Tezpur University is a Centre of Excellence in Curriculum and Pedagogy established in 2016 under PMMMNMTT Scheme, Ministry of Education, Government of India

INDIRA GANDHI NATIONAL OPEN UNIVERSITY

Staff Training and Research Institute of Distance Education

New Delhi 110068

Control No.:223057424S

UGC-Approved Short-Term Professional Development Programme

Under Pandit Madan Mohan Malaviya National Mission on Teachers and Teaching

This is to certify that

KASHIRA JAHAN

R.G.BARUAH COLLEGE

participated in and successfully completed the

Professional Development Programme on 'Implementation of NEP-2020 for University and College Teachers'

held from 12-20 June, 2023

and obtained 'A+' Grade

Prof. Santosh Panda
Director, STRIDE &
Coordinator of NEP-PDP Committee,
Indira Gandhi National Open University

New Delhi
Date of Issue:June 26, 2023

Prof. Uma Kanjilal
Pro-Vice Chancellor
Indira Gandhi National Open University

Government of India

MALAVIYA MISSION
TEACHER
TRAINING PROGRAMME

University Grants Commission

CERTIFICATE OF COMPLETION

NEP Orientation & Sensitization Programme

This is to certify that **KASHIRA JAHAN** from **R.G.Baruah College** has completed the Short Term Course on NEP Orientation & Sensitization under Malaviya Mission Teacher Training Programme (MM-TTP) of the University Grants Commission (UGC) organized by MMTTC, Tezpur University from 04/06/2024 to 13/06/2024.

@Akhilesh Kumar

Date of Issue: 07/07/2024

Certificate No:
MMTTC/TU/NEP/JUNE-A/2024/66

(Dr. Akhilesh Kumar)
Director (i/c)
MMTTC
Tezpur University

NAAC ACCREDITED WITH A+ GRADE

MALAVIYA MISSION
TEACHER
TRAINING PROGRAMME

University Grants Commission

CERTIFICATE OF COMPLETION

UGC Online Short Term Course on Policies and Practices for Inclusive Education

This is to certify that
Dr. Kashira Jahan
Assistant Professor
R.G.Baruah College

has completed the **UGC Online Short Term Course on Policies and Practices for Inclusive Education** under Malaviya Mission Teacher Training Programme (MM-TTP) of the University Grants Commission (UGC) organized by **MMTTC, Tezpur University** in collaboration with **Kharupetia College**, Darrang from **13/08/2026** to **20/08/2026**.

Grade Obtained: **A+**

(Dr. Ratan Sarkar)
Coordinator

(Dr. Rajeev K. Doley)
Director, MMTTC
Tezpur University

Date of Issue: 05/09/2026

Certificate No:MMTTC/TU/2026-27/STC-1/81

साहित्य और पर्यावरण

सम्पादक

डॉ. दीपक सिंह

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

रुद्रादित्य प्रकाशन

प्रयागराज

ISBN : 978-81-19335-59-6

RUDRADITYA PRAKASHAN
109, H/R/3-N, O.P.S. Nagar,
Kalindipuram, Prayagraj—211011
Mobile : 8187937731, 8175030339
Email : rudraditya00@gmail.com

Branch : Kaushambi Road, Jhalwa, Prayagraj

Edition : 2023

Price : ₹ 450.00

© Writer

Type Setting : Rudraditya Prakashan D.T.P. Unit

Cover Design : Raj Bhagat

Bhargava Printer

साहित्य और पर्यावरण

भूमिका

प्रकृति से मनुष्य का संबंध द्वंद्वात्मक रहा है। प्रकृति से संघर्ष और उसके संरक्षण के बीच ही मनुष्य ने साहित्य, संगीत व विविध कलाओं का सृजन किया है। लहरों, झरनों, पक्षियों के कलरव के बिना क्या किसी संगीत की कल्पना की जा सकती है? इसी तरह चित्रकला हो या वास्तुकला अथवा भौगोलिक-वैज्ञानिक अनुसन्धान, प्रकृति सबकी मूलाधार रही है। अपनी अस्तित्व रक्षा हेतु एक तरफ हमने प्रकृति से संघर्ष किया तो वहीं दूसरी ओर देवता की तरह उसकी पूजा कर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता भी प्रकट की। आज प्रकृति से हमारा यह संबंध विछिन्न हो चुका है।

बीसवीं सदी विकास और पर्यावरण संरक्षण के अंतर्द्वंद्व से संचालित रही है। दुनिया के तमाम विकसित और विकासशील देशों ने आर्थिक उन्नति प्राप्त करने के नाम पर विकास के ऐसे मॉडल को अपनाया जिसमें पर्यावरण का विनाश अनिवार्य था। विकास की इस अवधारणा ने वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों और आम जनमानस की चिंताओं को विकास विरोधी बताकर हाशिये पर डाल दिया है। आज जहाँ हम खड़े हैं वहाँ प्रकृति का अतिशय दोहन प्राणिमात्र का संकट बन चुका है। तमाम जीव-जंतु विलुप्त हो चुके हैं या विलुप्ति के कगार पर हैं। प्रकृति का अपना सफाई कर्मी गिद्ध धरती से गायब हो चुका है। ऋतुक्रम में अनियमितता सामान्य बात हो चुकी है। संसार की अधिकांश नदियों की जैव विविधता, जल की निर्मलता अनियंत्रित विकास की भेंट चढ़ चुकी है। भारत में गंगा नदी इसका ज्वलंत उदहारण है। जब कोई नदी मरती है तो सिर्फ नदी नहीं मरती उसके साथ एक सभ्यता मरती है। बोल्गा से गंगा तक हो या नील से अमेजन तक मनुष्य के फलने-फूलने का इतिहास नदियों से जुड़ा हुआ है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बड़े पैमाने पर साहित्य का लोकतंत्रीकरण हुआ है। स्त्री, दलित, आदिवासी जैसे हाशिये के स्वरों ने साहित्य में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। पर्यावरणीय दृष्टि से देखा जाय तो आदिवासी साहित्य ने (आदिवासियों और गैर आदिवासियों द्वारा लिखित) जल-जंगल-जमीन को प्राणिमात्र के अस्तित्व के साथ जोड़कर देखे जाने की व्यापक दृष्टि साहित्य को प्रदान की है। आदिवासी जीवन दर्शन प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन का शानदार उदहारण प्रस्तुत करता है वह प्रकृति से सिर्फ आवश्यकता भर ग्रहण करने का हिमायती है। प्रकृति उसके स्व में निहित है, वह किसी भी तरह प्रकृति को अन्य नहीं मनाता और न ही मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता का पक्षधर है। प्राचीन भारतीय वांग्मय में भी पृथ्वी को माता कह कर उसे चेतन स्वरूप में स्वीकार किया गया है। रवीन्द्र नाथ टैगोर का गीत 'अमार सोनार बांग्ला' प्रकृति के चेतनामय स्वरूप की विराट अभियक्ति है। लालच की सभ्यता ने मनुष्य और प्रकृति के सहयोगी रिश्ते को छिन्न-भिन्न कर मानवता के समक्ष अभूतपूर्व संकट खड़ा कर दिया

है। बीसवीं शदी के तीसरे दशक में ही जयशंकर प्रसाद ने अपनी कालजयी कृति कामायनी के माध्यम से समूची मानवजाति को भोग और विलास की संस्कृति के खतरे के खिलाफ चेतावनी देते हुए प्राकृतिक जीवन-दर्शन की रूप-रेखा हमारे सामने प्रस्तुत की थी लेकिन हमारी सत्ता संरचना ने उसका संज्ञान नहीं लिया—

बधी महावट से नौका थी, सूखे में अब पड़ी रही
उतर चला था वह जल-प्लावन, और निकलने लगी मही
निकल रही थी मर्म वेदना करुण विकल कहानी सी,
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती सी पहचानी सी !

अतिशय भोग और लालसा ने ही देव सभ्यता का विनाश किया था। यह त्रासदी ही कही जाएगी कि हमने कामायनी जैसी बौद्धिक उपलब्धि से कुछ नहीं सीखा। साथ ही गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित आर्थिक ढांचे और लालच की संस्कृति से बचने के प्रस्ताव को भी विकास के रास्ते में बाधा के रूप में देखा गया। स्थिति यहाँ तक आ पहुंची है कि न हवा साफ बची है न पानी। हमारे पूर्वजों ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि एक दिन ऐसा भी आयेगा जब पानी, हवा, बाजार से खरीदे जायेंगे। विकास की तमाम ऊँचाइयाँ लांघ कर भी हम एक तितली का जीवन संरक्षित कर पाने में नाकाम हैं। आज पर्यावरण का जो संकट हमारे सामने खड़ा है वह अतिशय भोग और लालसा की ही उपज है।

प्रकृति से साहित्य का सम्बन्ध हवा-पानी की तरह है। पूरी दुनिया की लोक कथाओं, गीतों और प्रर्थानाओं में प्रकृति विविध रूप में अभिव्यक्त हुई है। प्रकृति की शक्ति, सौन्दर्य गान से शुरू हुई यह यात्रा आज पर्यावरण संकट से रूबरू है। एक युद्ध जैसी स्थिति हर समय हमारे समक्ष बनी हुई है। 'नई कॉलोनी' कविता में दिनेश कुमार शुक्ल लिखते हैं—

'अरावली पर्वतमाला फिर हार मानकर
आज और कुछ ज़्यादा पीछे खिसक गयी है
भय से आँखें बन्द किये मैं देख रहा हूँ
इन्द्रप्रस्थ के पास खांडव-वन को खाता
छिड़ा हुआ इक घमासान है–
जिसमें धरती हार रही है'

धरती की हार प्राणी-मात्र की हार होगी। धरती के संघर्ष में हम सभी को भागीदार बनना होगा और लौटना होगा प्रकृति की ओर। प्रस्तुत पुस्तक 16-17 मार्च 2023 को राजीवगांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अंबिकापुर में 'साहित्य और पर्यावरण' विषय पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में पढ़े गए पर्चों का संकलन है। उम्मीद है कि पुस्तकाकार रूप में यह पर्यावरणीय सरोकारों को बढाने और हिन्दी क्षेत्र में एक सार्थक बहस को संचालित करने में मददगार होगी।

●●●

अनुक्रम

भूमिका **5**

1. आदिवासी साहित्य और प्रकृति का सह-अस्तित्व —डॉ. विश्वासी एक्का 9
2. मनुष्य का जीवन और पारिस्थितिकी तंत्र —नीलाभ कुमार 15
3. समकालीन साहित्य में पर्यावरणीय चिन्तन —डॉ. के. आशा 22
4. लोक गीतों में प्रकृति के विविध रूप —अजय कुमार तिवारी 26
5. डॉ. श्यामसुन्दर दुबे के साहित्य में पर्यावरणीय चिन्तन —जीतन राम पैकरा 34
6. केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में प्रकृति एवं खेती-किसानी —डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय 45
7. Climate Change and Water Crisis in Eco-films *Kadvi Hawa* and *Turtle* —Dr. Bhanupriya Rohila 51
8. Ecocritical Reading of Literature : Understanding the Silencing of Nature —Dr. R.P. Singh 60
9. टिकाऊ कृषि तंत्र एवं स्मार्ट कृषि-एक सैद्धांतिक विश्लेषण —डॉ. अनिल कुमार सिन्हा, दीपिका स्वर्णकार 68
10. पर्यावरण व पारिस्थितिकी का स्वरूप एवं अंतःसंबंध —वी सुगुणा 81
11. राजस्थानी चित्रकला में प्रकृति —कमल किशोर कश्यप 88
12. साहित्य में पर्यावरण संरक्षण एवं संचेतना : एस आर हरनोट —संजीव कुमार मौर्य 92
13. पर्यावरण व गहन पारिस्थितिकी : गाँधी एवं अंबेडकर की नजर से —गोपाल 104
14. बोधकथा साहित्य एवं पर्यावरण चिंतन —सुशील कुमार तिवारी 112
15. यह नरम-हरा-कच्चा संसार —ऋचा वर्मा 122
16. मानव और प्रकृति का अंतर्संबंध तथा समकालीन हिंदी उपन्यास —प्रियंका जायसवाल, डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय 129
17. हिंदी उपन्यासों में व्यक्त पर्यावरणीय प्रदूषण एवं खतरे —अक्षतानंद पाण्डेय 135
18. प्राकृतिक संसाधन का दोहन और पर्यावरणीय संकट —डॉ. क्रेसेन्सिया टोप्पो, डॉ. सुशील कुमार टोप्पो 142
19. पर्यावरण संरक्षण : हड़प्पा और वैदिक सभ्यता —डॉ. अजय पाल सिंह 147
20. आदिवासी साहित्य में जल-जंगल और जमीन का संघर्ष —डॉ. कुसुम माधुरी टोप्पो 150
21. कालिदास के साहित्य में पर्यावरण रक्षा के उपाय —राजीव कुमार 157

22. फाँस उपन्यास में अभिव्यक्त पर्यावरण संकट और किसान जीवन
—श्रीमती स्नेहलता खलखो, डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय 163
23. महाकवि कालिदास के काव्यों में प्रकृति का स्वरूप —महेश कुमार अलेंद्र 170
24. आदिवासी कविता में पर्यावरण चिंतन —मनोरमा पाण्डेय 181
25. छत्तीसगढ़ी उपन्यास 'पखरा ले उठे आगी' में व्यक्त प्रकृति और संस्कृति का
समन्वय —डॉ. (श्रीमती) अलका पंत, श्रीमती वंदना रानी खाख़ा. 189
26. हिंदी साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण : विजय राठौर के काव्य के
संदर्भ में —गोवर्धन प्रसाद सूर्यवंशी, डॉ. पुनीत कुमार राय 197
27. ऋषि दयानंद के साहित्य में पर्यावरण चिंतन —डॉ. अजय आर्य 208
28. भारत में पूँजीवाद और जलवायु संकट —धवल गुप्ता 214
29. पर्यावरण एवं राजनीतिक चिंतन —मुकेश कुमार सिंह 220
30. प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन —डॉ. कमलेश दुबे 225
31. आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल में प्रकृति —कसीरा जहाँ 234
32. छायावादीयों कवियों के काव्य में प्रकृति चित्रण-निराला के
संदर्भ में —शिवशंकर राजवाड़े 243
33. सत्यभामा आडिल की आधुनिक कविताओं में प्रकृति —सीमा मिश्रा 250
34. पर्यावरण संरक्षण में समकालीन हिन्दी साहित्य एवं मीडिया
की भूमिका —रश्मि पाण्डेय 254
35. आधुनिक काल में प्रकृति —प्रियंका मिश्रा 260
36. मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में प्रकृति —अफीफा फातिमा शेक,
डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन 270
37. डॉ. माणिक विश्वकर्मा 'नवरंग' का रचना संसार और
प्रकृति के विविध रंग —श्रीमती संगीता शर्मा 275
38. प्रेमचंद की कहानियों में प्रकृति वर्णन—सतीश कुमार धीवर 287
39. आदिवासी साहित्य में जल, जंगल और जमीन का संघर्ष —कल्पना सिदार 293
40. अज्ञेय के काव्य में प्रकृति —ज्योति कमल 299
41. मंगलेश डबराल की कविताओं में जल, जंगल और ज़मीन
—श्रीमती रामेश्वरी दास 306
42. गांधीवादी दर्शन और पर्यावरण संरक्षण —श्रीमती निशा शर्मा 314
43. तुलसीदास के काव्य में प्रकृति चित्रण —नेहा विश्वकर्मा 319
44. Ecopoetry and Sustainable Development —Dr. Nidhi Mishra 324
45. Conservation of some Medicinal Plants in Balrampur, C.G.
—Laxmi Singh 330
46. पर्यावरण असंतुलन : 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास के सन्दर्भ में
—लक्ष्मी के. एस. 337

●●●

आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल में प्रकृति

कसीरा जहाँ

आर॰जी॰ बरुवा महाविद्यालय

गुवाहाटी

जन्मावस्था से ही मनुष्य प्रकृति की गोद में पलता और बढ़ता हैं। प्रकृति प्रारम्भ से ही मनुष्य की सहज वृतियों का समाधान करती है और इस प्रकार अव्यक्त रूप में मानव के साथ प्रकृति का संबंध स्थापित हो जाता है। मानवी क्रियाकलापों में प्रकृति अपने अनेक रूपों में झलकती है। मानव के प्रत्येक कार्यों में प्रकृति का सहयोग होता है। मनुष्य के दो रूप पाये जाते हैं-पहला स्थूल या दैहिक और दूसरा सूक्ष्म या काल्पनिक। प्रकृति इन दोनों रूपों में ही मनुष्य के लिए नितांत उपयोगी और आवश्यक है। दैहिक या स्थूल रूप में प्रकृति के बिना मनुष्य का अस्तित्व ही असंभव है। प्रकृति द्वारा प्राप्त जल,वायु,अग्नि और वनस्पतियाँ जीव जगत के लिए परमावश्यक हैं। मानव जीवन प्रकृति के उपादानों पर ही आश्रित है। नीर, अग्नि, भोजन के लिए अन्न, वस्त्र के लिए कपास, रहने के लिए मिट्टी और लकड़ी भी हम प्रकृति से ही प्राप्त करते हैं। वहीं मानव के सूक्ष्म या काल्पनिक रूप का संबंध ज्ञानेन्द्रियों से और इसी से कल्पना, विभावना और रागात्मक वृतियों से है। मानवीय कल्पना, विभावना और रागात्मकता उसकी मूल अंतःवृतियों और आसपास के वातावरण पर निर्भर है। मनुष्य की भांति प्रकृति के भी दो रूप है गोचर और अगोचर। गोचर रूप में मनुष्य अपनी इंद्रियों के साधारण स्पर्श से अनुभूति कर सकता है। उदाहरणस्वरूप फूलों का खिलना, नदियों का बहना आदि। परंतु अगोचर रूप दर्शन के लिए मनुष्य को कर्मेन्द्रियों के स्थान पर ज्ञानेन्द्रियों की, कल्पना तथा अनुभूतियों का उपयोग करना पड़ता है। एक भावुक मानव प्रकृति की सुंदरता पर मुग्ध होकर उसको अपने साहित्य की विषयवस्तु बनाता है। साहित्य के सभी रूपों में प्रकृति का बहूत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। साहित्य में प्रकृति के सुंदर, विराट और भयंकर सभी रूपों का विशद वर्णन पाया जाता है। उन्होंने प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में स्वच्छंद विहार कर उसके प्रत्येक अंग का सूक्ष्म तरीके के निरीक्षण किया है। प्रकृति के प्रत्येक उपदानों चाहे वह वन्य-वृक्ष, सूखी झाड़ियाँ हों या प्रस्तर खंड सभी

का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। एक साहित्यकार प्रकृति के साथ अपने भावों का संबंध स्थापित करता है। वह प्रकृति को निर्जीव न समझकर उसमें मानव चेतना का अनुभव कर उसके साथ अपनी आंतरिक भावनाओं का समन्वय भी करता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वैदिक काल से लेकर अब तक साहित्य में प्रकृति के विशाल रूप का वर्णन किसी न किसी रूप में आया है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल भक्तिकाल तथा रीतिकालीन काव्य में हुए प्रकृति वर्णन को इस शोध पत्र के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आदिकालीन काव्य में प्रकृति चित्रण

हिन्दी साहित्य के आदिकाल या वीरगाथाकाल में काव्य का मुख्य स्वर वीरों की पूजा तथा उनका यशोगान करना था। इसका कारण यह था कि यह समय अशांत था। गृह युद्ध तथा विदेशी शत्रुओं के साथ मार-काट की धूम थी। ऐसे समय में आदिकालीन कवियों ने युद्ध करने वाले वीरों को देश रक्षा हेतु, धर्म तथा मर्यादा रक्षा हेतु प्रोत्साहित करने के लिए कविताएँ लिखी। आदिकालीन कवियों ने उन वीरों के प्रति श्रद्धा नत होकर उनकी कीर्ति को सुरक्षित तथा अनुकरणीय रखने के लिए उसे साहित्यिक रूप देने का प्रयत्न किया। आदिकालीन कवि अधिकांशतः राजदरबारी हुआ करते थे। अतः वे या तो अपने आश्रयदाताओं को प्रोत्साहित करने के लिए वीर रस से परिपूर्ण कविताएँ लिखते थे या उनका मनोरंजन करने के लिए श्रृंगारपूर्ण कविताएं। आदिकालीन काव्य परंपरा अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है,कि प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण पर आदिकालीन कवियों ने इतना ध्यान नहीं दिया, जितना वैदिक युग में कवियों ने प्रकृति वर्णन पर दिया गया था। यहीं कारण है, कि कालिदास के काव्य में प्रकृति का जितना स्वतंत्र वर्णन मिलता है,उतना आदिकालीन काव्य में नहीं। कालीदास को प्रकृति का ही कवि माना गया है। आदिकालीन कवियों में प्रकृति प्रेमी रूपी सूक्ष्म सौंदर्य चेतना का आभाव मिलता है। आदिकालीन कवियों ने पूर्वानुराग के प्रसंग में प्रकृति का वर्णन किया है। उन्होंने नायक नायिका के सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का सर्वाधिक प्रयोग किया है।

आदिकालीन कवि राजदरबार के ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण में विलास और वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए काव्य रचना कर रहे थे। राजदरबार से बाहर निकल स्वच्छंद प्रकृति को निहारने का अवकाश नहीं था। प्रकृति से उनका संबंध विच्छेद हो गया।

बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, आल्हाखंड में यत्र तत्र प्रकृति वर्णन मिलता है। प्रकृति वर्णन के अंतर्गत नगर, नदी, पर्वत आदि का वर्णन पाया जाता हैं। इस काल के साहित्य में प्रकृति वर्णन की दोनों पद्धतियों आलंबन तथा उद्दीपन का प्रयोग किया गया है। प्रकृति

के उद्दीपन रूप का वर्णन अधिकांशतः मिलता है। प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन अल्पयत्र या न के बराबर है। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं पर प्रकृति वर्णन की परिगणन शैली भी दिख पड़ती है। उद्दीपन रूप में प्रकृति को शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों में चित्रित किया गया है। आदिकालीन अपभ्रंश रचना 'संदेश रासक' में प्रकृति के अपूर्व सौंदर्य का वर्णन दिख पड़ता है। कवि ने प्रकृति का चित्रण मानवीय भावनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है।

प्रकृति के आलंबन रूप का चित्रण

यद्यपि आदिकालीन काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण सर्वाधिक देखने को मिलता है, जबकि आलंबन रूप चित्रण न के बराबर है। मैथिल कवि विद्यापति ने कहीं कहीं पर प्रकृति के आलंबन रूप वर्णन किया है। उदाहरणस्वरूप-

सरस बसंत समय भल पाओलि, दछिन पवन बह धीरे
सपनहू रूप वचन एक भाषिय, मुख से दूरी करू चीरे।[1]

इसके अतिरिक्त आदिकालीन फागु काव्य में भी प्रकृति के आलंबन रूप का वर्णन मिलता है। फागु काव्य के कवियों ने बसंत, वर्षा आदि के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन किया है।

प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण

आदिकालीन सभी कवियों ने अपने काव्य ग्रन्थों में नायक नायिका के संयोग तथा वियोग की दशाओं के उद्दीपन रूप में विभिन्न ऋतुओं तथा प्रकृति के विभिन्न उपादानों का वर्णन किया है। बीसलदेव रासों, पृथ्वीराज रासो, संदेश रासो आदि सभी रासो ग्रन्थों में प्रकृति के उद्दीपन रूप का अपूर्व चित्रण हुआ है। उदाहरणस्वरूप—

"कि तहि देस शाह फुरह जुन्ह निसी णम्मल चन्द्रह।
यह कलरउ न कुणति हंस फल सेवि रविदह।
अह पायउ पहु पढ़इ कोई सुललिय पुणराइण।
अह पंचउ णहु कुणई कोई कावालिय भाइण।"[2]

यहाँ कवि ने शरद ऋतु के माध्यम से प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन किया है।

बीसलदेव रासो में नरपति नाल्ह ने बारहमासा के अंतर्गत प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण किया है—

चैत मासई चतुरंगी हे नारि।
प्रीय बिण जीविजइ किसई अधारि।[3]

के उद्दीपन रूप का वर्णन अधिकांशतः मिलता है। प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन अल्पयत्र या न के बराबर है। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं पर प्रकृति वर्णन की परिगणन शैली भी दिख पड़ती है। उद्दीपन रूप में प्रकृति को शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों में चित्रित किया गया है। आदिकालीन अपभ्रंश रचना 'संदेश रासक' में प्रकृति के अपूर्व सौंदर्य का वर्णन दिख पड़ता है। कवि ने प्रकृति का चित्रण मानवीय भावनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है।

प्रकृति के आलंबन रूप का चित्रण

यद्यपि आदिकालीन काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण सर्वाधिक देखने को मिलता है, जबकि आलंबन रूप चित्रण न के बराबर है। मैथिल कवि विद्यापति ने कहीं कहीं पर प्रकृति के आलंबन रूप वर्णन किया है। उदाहरणस्वरूप-

सरस बसंत समय भल पाओलि, दछिन पवन बह धीरे
सपनहू रूप वचन एक भाषिय, मुख से दूरी करू चीरे।[1]

इसके अतिरिक्त आदिकालीन फागु काव्य में भी प्रकृति के आलंबन रूप का वर्णन मिलता है। फागु काव्य के कवियों ने बसंत, वर्षा आदि के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन किया है।

प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण

आदिकालीन सभी कवियों ने अपने काव्य ग्रन्थों में नायक नायिका के संयोग तथा वियोग की दशाओं के उद्दीपन रूप में विभिन्न ऋतुओं तथा प्रकृति के विभिन्न उपादानों का वर्णन किया है। बीसलदेव रासों, पृथ्वीराज रासो, संदेश रासो आदि सभी रासो ग्रन्थों में प्रकृति के उद्दीपन रूप का अपूर्व चित्रण हुआ है। उदाहरणस्वरूप—

"कि तहि देस शाह फुरह जुन्ह निसी णम्मल चन्द्रह।
यह कलरउ न कुणति हंस फल सेवि रविदह।
अह पायउ पहु पढ़इ कोई सुललिय पुणराइण।
अह पंचउ णहु कुणई कोई कावालिय भाइण।"[2]

यहाँ कवि ने शरद ऋतु के माध्यम से प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन किया है।

बीसलदेव रासो में नरपति नाल्ह ने बारहमासा के अंतर्गत प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण किया है—

चैत मासई चतुरंगी हे नारि।
प्रीय बिण जीविजइ किसई अधारि।[3]

प्रकृति का मानवीकरण रूप में वर्णन—

माई हे! आज दिवस पुनमन्त।
करि चुमाओन राय बसंत।
सम्पुन सुधानिधि दधिभल भेल।
भमि भमि भमिरिह हंकार।[4]

अलंकार रूप में प्रकृति चित्रण

आदिकालीन काव्य में प्रकृति का वर्णन अलंकार के रूप भी किया गया है। इस काल के कवियों ने प्रकृतिक उपदानों का प्रयोग नायक नायिका के शारीरिक सौंदर्यनुभूति में किया हैं। उदाहरणस्वरूप—

सुंदर वदन चारु अरु लोचन, काजर रंजति भेला।
कनक-कमल माझ काल भुजंगिनी, श्रीयुत खंजन खेला।।[5]

उपदेश और नीति के माध्यम के रूप में प्रकृति वर्णन

आगसु ने अपनी 'जीव दया रास' ग्रंथ में मानव को उपदेश देने के लिए प्रकृति का सहारा लिया है। उदाहरणस्वरूप—

देहा सरवर मनिझहि कमलु,
तहि वइसउ हंभा धुरी थवलै।
कालु भमरु उपरि भमई,
आठखए रसगंधु वि ले सई।[6]

भक्तिकालीन काव्य में प्रकृति वर्णन

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल विदेशियों के आक्रमण तथा मुगलों के प्रतिष्ठित होने का समय था। जनता दुखी तथा पीड़ित थी। कविताएँ राजदरबार ने निकल झोपड़ी में आ बसी। भक्तिकालीन कवियों ने भक्ति और प्रेम की ऐसी धारा प्रवाहित की जिससे शासको के अत्याचारों को भूलकर सामान्य जन भगवान के भक्ति सरोवर में निमग्न होने लगे। अतः इस काल के काव्य में एक धार्मिक प्रवाह देखने को मिलता है भक्तियुगीन कवि प्रकृति के दृश्य जगत को प्रमुख्यतः अपनी काव्य या अनुभूतियों का विषय नहीं बनाता इसका कारण यह था कि उन्होंने अपनी साधना के लिए आध्यात्मिक वातावरण परंपरा के अनुसार ग्रहण किया है। भक्तिकाल में ज्ञानाश्रयी शाखा के कबीर, रैदास, नानक, सुंदरदास और दादू दयाल आदि संतों ने प्रकृति का प्रयोग मुख्यतः नीति व उपदेश अलंकार रहस्य और प्रतीक के रूप में

किया है। आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन करते हुए प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण किया है। प्रेमाश्रयी काव्य धारा के कवियों ने भी प्रकृति के कई रूपों का वर्णन किया हैं। कृष्ण भक्ति काव्य शाखा के कवियों का काव्य प्रकृति वैभव से सम्पन्न जान पड़ता है। कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि सूर को तो प्रकृति का कुशल चितेरा माना जाता है। सूरदास के काव्य में प्रकृति के मानवीकरण रूप का निदर्शन होता हैं। रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास के काव्य में प्रकृति चित्रण की विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग हुआ है। लेकिन उन्होंने राम भावना से युक्त प्रकृति का प्रयोग किया है। भक्तिकाल में प्रकृति के निम्नलिखित रूपों का चित्रण मिलता है—

प्रकृति के आलंबन रुप का चित्रण

तुलसीदास ने प्रकृति का स्वतंत्र निरीक्षण किया है। कवि ने गीतवली में पेड़-पौधे, पशु पक्षियों तथा जलाशयों का भी वर्णन किया है। उदाहरणस्वरूप—

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषा ऋतु प्रवेश विशेष गिरि देखत मन अनुरागत।[7]

प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण

भक्तिकालीन सभी कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रुप् का वर्णन किया है। कवि मीराबाई ने प्रकृति के उद्दीपन का बहुत सुंदर वर्णन किया है। उदाहरणस्वरूप—

कारी अंधियारी बिजली चमके, विरहणी अति डरपाये रे
गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लाये रे।[8]

अर्थात बिजली का चमकना या पवन का बहना या उसकी मधुर ध्वनि बिरहणी की व्यथा को और भी उद्दीप्त कर रहा है।

प्रतीक के रूप में प्रकृति चित्रण

भक्तिकालीन काव्य में प्रकृति का चित्रण प्रतीक के रूप में किया गया है। उदाहरणस्वरूप—

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी, तेरे ही नाल सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास।[9]

यहाँ कबीरदास ने नलिनी को प्रकृति की प्रतिनिधि मान कर अन्योक्ति द्वारा ब्रह्मवाद का दिग्दर्शन कराया है। कबीर ने प्राकृतिक उपादान जल को ब्रह्म या ईश्वर का प्रतीक माना है।

उपदेश तथा नीति के माध्यम के रूप में प्रकृति चित्रण

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहूँ किन जाहिं
जल में ज्यों छाया परी, काया भींजति नाहिं।[10]

प्रकृति में परम तत्व का आभास

भक्तिकालीन रहस्यवादी कवि प्रकृति वर्णन में परम तत्व या आभास पाते हैं—

बहुतै जोति-जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दीपहिं ओहीं जोति। रतन पदारथ मानिक मोती।
जह-जह बिहंसी सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकी जोति परगसी।

यहाँ जायसी ने प्रकृति में ईश्वर का आभास पाया है।[11]

प्रकृति का मानवीकरण रूप में चित्रण

भक्तिकालीन काव्य में प्रकृति को मानवीकरण रूप में वर्णित किया गया है। तुलसीदास के काव्य में प्रकृति का मानवीकरण रूप दीख पड़ता है। उदाहरणस्वरूप—

सरित जल मलिन, सरनि सूखे नाल
अलि न गुजत, कल कुंजे न मराल
तरु जे जानकी लाये, ज्याये हरि कटि कपि,
हेरे न हुंकरि, झरे फल न रसाल।[12]

अर्थात सीता विरह में सरिताओं का जल मलिन हो गया है। सरोवर सूख गए हैं और पक्षियों ने अपना कल कूजन तक बंद कर दिया है।

अलंकार रूप में प्रकृति चित्रण

भक्तिकालीन अधिकांश कवियों ने नायक-नायिका के सौंदर्य का वर्णन करते समय प्रकृति के उपादानों की सहायता ली है। उदाहरणस्वरूप—

अवन अधर सुंदर, द्विज छवि अनूप न्यारी।
मनहु अरुन कज कौंस मजूल जुग पाति प्रसव
कुद कली जुगल जुगल परम सुभ्र वारी।[13]

यहाँ तुलसीदास ने राम के दांतों की तुलना अरुण कमल के बीच खिलनेवाली शुभ्र वर्ण की कुन्दकली से किया है।

रीतिकालीन काव्य में प्रकृति वर्णन

रीतिकालीन कवि राज्यश्रित थे। उनका उद्देश्य राजदरबारों में आदर पाना था। राज्यश्रित होने के कारण प्रकृति के साथ उनका संपर्क बहुत ही कम हुआ। अतः प्रकृति का

स्वतंत्र वर्णन उनके काव्य में स्थान न पा सका। रीतिकालीन काव्य परंपरा में मनोरंजन विषयक कविताएँ कविताएँ लिखी जाती थीं। इस काल के कवि इसी में अपनी कृतार्थता तथा काव्य की सफलता मानते थे। इस काल में राजदरबारों का वातावरण सूक्ष्म चिंतन के लिए नहीं था। रीतिकाल में प्रकृति का उल्लास कहीं कवि की कल्पना में या प्रमद-वनों और निकुंजों में बंधा दिख पड़ता है। इस काल में प्रकृति का स्वतंत्र या निरपेक्ष वर्णन अल्पयत्र ही मिलता है। इस काल में प्रकृति आलंबन तथा उद्दीपन दोनों रूपों में वर्णित है। काव्य में आलंबन रूप के चित्रण का अभाव मिलता है जबकि प्रकृति के उपादानों का वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है। रीतिकालीन कवि बिहारी, सेनापति आदि के काव्य में प्रकृति का उन्मुक्त सरस चित्रण देखने को मिलता है। प्रकृति वर्णन में सभी रीतिकालीन कवियों में सेनापति बेजोड़ माने जाते हैं।

रीतिकालीन काव्य में प्रकृति वर्णन निम्नलिखित रूपों में पाया जाता है—

प्रकृति के आलंबन रूप का वर्णन

बिहारी तथा सेनापति के काव्य में प्रकृति के आलंबन रूप का चित्रण किया गया है। सेनापति ने प्रकृति के स्वतंत्र नैसर्गिक तथा आलंबन रूप का वर्णन करते हुए कहा है-

वृष कौ तरनि तेज सहसौ किरन करि
ज्वालन के जाल विकराल वरसत है।
तजति धरनि जग जरत झरनि, सीरी
छाँह को पकरि पंथी पंछी विरमत हैं।[14]

कवि सेनापति ने इन पंक्तियों के माध्यम से वृषि राशि के सूर्य की प्रचंडता का स्वतंत्र वर्णन किया है। सूरज की सहस्रों किरणें अपनी प्रचंड ज्वाला से धरती को तपा रही हैं। पथिक तथा पंछी दोनों छाया में विश्राम कर रहे हैं।

प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ती री,
कूकी कूकी अबही करै जो किन कोरी लै।[15]

घनानन्द ने बिरहणी नायिका के बिरह व्याकुल दशा का वर्णन किया है। नायिका पहले से ही दुखी है, परंतु कोकिला की मधुर मीठी बोली उसके विरह को और भी बढ़ा देता है। कहीं कहीं प्रकृति के उद्दीपन रूप के वर्णन में उहात्मकता दिख पड़ती है।

प्रकृति के मानवीकरण रूप का वर्णन

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन-तन मांह।
देखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह।[16]

कवि बिहारी जेठ महीने की गर्मी का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि छाया भी छाया चाहती है। अतः प्रकृति को मानव के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अलंकार रूप में वर्णित प्रकृति

सीतानयन चकोर सखि, रविवंसी रघुनाथ
रामचन्द्र सिय कमलमुख, भलो बन्यों है साथ।[17]

यहाँ सीता के नयनों कि तुलना चकोर से तथा सीता और राम के मुखमंडल की तुलना कमल के पुष्प से की गयी है।

उपदेश और नीति का माध्यम

रीतिकालीन कवियों ने उपदेश देने के लिए तथा नीति की शिक्षा देने के लिए प्राकृतिक उपादानों की सहायता ली है। बिहारी ने राजा जयसिंह को कर्तव्यविमुखता से बचाने के लिए प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग कर एक उपदेशात्मक दोहा लिखा था—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली, कली ही सौ बन्ध्यों, आगे कौन हवाल।[18]

प्रकृति में परम तत्व का आभास

रीतिकालीन कवि घनानन्द के काव्य में प्रकृति में परम तत्व का आभास मिलता है। उदाहरणस्वरूप—

घनआनंद जीवनदायक हो,
कछु मेरियौ पीर हियै परसौ।
कबंहु वा बिसासी सुजान के आँगन
मो अंसुवान को लै बरसौ।[19]

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं, कि प्रकृति चित्रण प्रत्येक काल में हुआ है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक प्राकृतिक सौन्दर्य ने कवियों को न केवल प्रभावित किया है, अपितु उत्कृष्ट रचना के लिए प्रेरित भी किया है।कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों को सूक्ष्मता से परिमार्जित तथा परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य जगत के आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक प्रकृति भिन्न भिन्न रूपों में वर्णित हुई है।

संदर्भ :

1. चतुर्वेदी, डॉ. राजेश्वर प्रसाद तथा अन्य, हमारे कवि और लेखक, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ,1987, पृष्ठ-3
2. शर्मा, डॉ. शिवकुमार, हिन्दी साहित्य; युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवा संस्करण-1989, पृष्ठ-77

3. शर्मा, डॉ. शिवकुमार, हिन्दी साहित्य; युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारहवा संस्करण-1989, पृष्ठ-69
5. देशवाल, प्रदीप, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, 2017 पृष्ठ-354
6. गुप्त, गणपतिचन्द्र, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण-1990, पृष्ठ-101
7. गुप्ता किरणकुमारी, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 2006, पृष्ठ-116
8. चतुर्वेदी, रामस्वरुप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, अट्ठाइसवाँ संस्करण-2021, पृष्ठ -52
9. गुप्ता किरणकुमारी, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 2006, पृष्ठ-99
10. चतुर्वेदी, रामस्वरुप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, अट्ठाइसवाँ संस्करण-2021, पृष्ठ-53
11. शर्मा राजनाथ, साहित्यिक निबंध, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, तीसरा संस्करण-2010, पृष्ठ-400
12. गुप्ता किरणकुमारी, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 2006, पृष्ठ-125
13. गुप्ता किरणकुमारी, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 2006, पृष्ठ-127
14. सिंह, विजयपाल, रीतिकाव्य संग्रह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, अष्टम संस्करण-2006, पृष्ठ-115
15. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र और अन्य (सं), रीतिकाव्य धारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृष्ठ-47
16. सिंह, विजयपाल, रीतिकाव्य संग्रह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, अष्टम संस्करण-2006, पृष्ठ-87
17. सिंह, विजयपाल, रीतिकाव्य संग्रह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, अष्टम संस्करण-2006, पृष्ठ-99
18. सिंह, विजयपाल, रीतिकाव्य संग्रह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, अष्टम संस्करण-2006, पृष्ठ-82
19. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र और अन्य(सं), रीतिकाव्य धारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृष्ठ-147

■

शोध ऋतु

Shodh-Rityu तिमाही शोध–पत्रिका

Open Transparent PEER Reviewed & Refereed JOURNAL

विशेषांक-हिन्दी साहित्य में मानवीय संवेदना

| IIJIF Impact-8.712| ISSN-2454-6283 | April-2024 |

IMPACT FACTOR - **(IIJIF-8.712)**

(Copernicus: 53.99) ***(Cosmos-4.649)***

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

सम्पादक–डॉ.सुनील जाधव, नांदेड
9405384672
तकनीकी सम्पादक–अनिल जाधव, मुंबई

'हिन्दी साहित्य में मानवीय संवेदना' विशेषांक संपादक मण्डल

संपादक	सह–संपादक	सह–संपादक
प्रा.राबन मुल्ला, सातारा	डॉ.शिराज शेख, सातारा	श्री.हरी पोरे, सातारा

पत्राचार हेतु पता–
महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी, हनुमान गढ़ कमान के सामने, नांदेड–431605

प्रकाशन / प्रकाशक
डॉ.सुनील जाधव
नव साहित्यकार पब्लिकेशन, नांदेड–महाराष्ट्र

मुद्रण/ मुद्रक
तन्मय प्रिंटर्स,नांदेड
डॉ.सुनील जाधव,नांदेड

मेल पता shodhrityu78@yahoo.com
वेबसाइट www.shodhritu.com

"शोध–ऋतु ' तिमाही पत्रिका में आलेख लेखक निम्न बिन्दुओं पर अवश्य ध्यान दें ।
फॉण्ट–कृति देव 10 वर्ड फाइल में ही सामग्री स्वीकृत की जायेगी ।
आलेख पेज की मर्यादा चार पेज होगी ।
आलेख विशेषज्ञों द्वारा चयन किये जायेंगे ।
चयनित आलेख की सूचना मेल द्वारा आलेख लेखक को दी जायेगी ।
चयनित आलेख के लिए 1000रु प्रोसेसिंग शुल्क लिया जायेगा ।
लेखक मौलिक शोधपरक एवं वैचारिक आलेख ही भेंजे ।
व्हाट्स एप–9405384672

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

बैंक विवरण

NAME	SUNIL GULABSING JADHAV
BAINK	BANK OF MAHARASHTRA, WORKSHOP CORNER, NANDED, MAHARASHTRA
ACCOUNT NO.	2015 8925 290
IFSC CODE	MAHB0000720

PhonePe
ACCEPTED HERE
Scan & Pay Using PhonePe App

or Pay to Mobile Number using PhonePe App
9405384672
Sunil Jadhav

वार्षिक परामर्श मंडल (2024)

- प्रो .डॉ.रामप्रसाद भट, हैम्बुर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी
- प्रो.डॉ.रंजित उपुल, केलनिया विश्वविद्यालय, श्रीलंका
- प्रो.डॉ.रिदिमा निशादिनी लंसकारा, श्रीलंका
- प्रो.डॉ.अनुषा सल्वाथुरा, श्रीलंका
- प्रो.डॉ.नुर्मातोव सिराजोद्दीन, उज्बेकिस्तान
- सौ.सविता तिवारी, मॉरिशस
- प्रो.डॉ.मक्सीम देम्चेंको, मास्को, रशिया
- प्रो.डॉ.हिदायतुल्लाह हकीमी, जलालाबाद, अफगानिस्तान
- प्रो.डॉ.ली यालान, बीजिंग, चीन
- प्रो.विवेक मणि त्रिपाठी, चीन
- प्राचार्य डॉ.आर.एम.जाधव,पीपल्स कॉलेज,नांदेड
- प्र.उपकुलपति डॉ.जोगेन्द्रसिंह बिसेन.नांदेड
- प्रो.डॉ.मुकेशकुमार मालवीय, हिन्दू बनारस विश्वविद्यालय,बनारस
- प्रो.डॉ.राजेद्र रावल,राजकोट,गुजरात
- प्रो.डॉ.अरविंद शुक्ल,उत्तर प्रदेश
- प्रो.डॉ.संगम वर्मा,पंजाब
- प्राचार्य.डॉ.राजेन्द्र प्रसाद,प्रतापगढ
- प्राचार्य डॉ.प्रवीण कुमार सक्सेना, गांगड़तलाई,राजस्थान
- प्राचार्य डॉ.नवलकिशोर त्रिपाठी–चित्रकूट
- प्रो.डॉ मंगला रानी, पटना
- प्रो.डॉ.पठाण रहीम, हैदराबाद
- प्रो.डॉ.श्यामराव राठोड, तेलंगाना
- प्रो.डॉ.भारत भूषण, पंजाब
- प्रो.डॉ.परिमल अम्बेकर, गुलबर्गा
- प्रो.डॉ.ओमप्रकाश सैनी, हरियाणा
- प्रो.डॉ.लक्ष्मी गुप्ता,यमुनानगर,हरियाणा
- डॉ.प्रदीप रेवाप्पा सरवदे, बारामती
- डॉ.तुलसीदास गुरुनुले,माहूर
- डॉ.पुष्पा चौधरी, (जूलॉजी), कानपूर
- प्रो.डॉ.शंकर पजई, हिंगोली
- प्रो.डॉ.संदीप पाइकराव, नांदेड़
- डॉ.शबाना दुर्रानी,नांदेड़ (उर्दू)
- डॉ.राजू सी.पी., त्रिशूर, केरल

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

अनुक्रमणिका

संपादकीय.....6

1.संत रविदास के काव्य में मानवीय संवेदना 8

–प्रा.डॉ.पवार एस.एन......8

2.मध्यकालीन संतों के काव्य में मानवीय संवेदना.....10

–प्रा.विजय लोहार.....10

3.मालती जोशी कृत 'गुमशुदा की तलाश' कहानी में मानवीय संवेदना.....13

–डॉ.शेख मोहसीन शेख रशीद.....13

4.शिवमंगल सिंह सुमन की 'जागरण' कविता में समता मूलक समाज की मानवीय संवेदना 15

–डॉ.सुनील गुलाबसिंग जाधव.....15

5.शरद सिंह के उपन्यासों में व्यक्त संवेदनशील नारी जीवन 17

–डॉ.चंद्रकांत यादवराव बंडेवार.....17

6.मन्नू भंडारी और निरूपमा बरगोहाइञ की आत्मकथाओं में चित्रित मानवीय संवेदना 20

–कसीरा जहां.....20

7.सुधाकर मिश्र की कविताओं में चित्रित मानवीय संवेदनाएँ.....22

–[1]विकास सुरेश शेटे, [2]डॉ.अशोक मोहन मस्के.....22

8.हिन्दी दलित कहानियों में चित्रित मानवीय संवेदना 25

–नीतामणि बरदलै.....25

9.इन्सान को आखरी सासों तक बचाने की कोशिश 'और इन्सान मर गया' उपन्यास.....26

– डॉ.शहनाज मेहमुदशा सय्यद.....26

10.कृष्णा सोबती के उपन्यास दिलोदानिश में नारी के प्रति रहनेवाली क्षीण मानवीय संवेदना 28

–[1]नितुश्रीदास, [2] डॉ.नुरजहां रहमतुल्लाह.....28

11.कबीर के काव्य में मानवीय संवेदना.....31

–प्रा.हिरामण देवराम टोंगारे.....31

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

12.'मुक्तिपर्व ' उपन्यास में मानवीय संवेदना.....33
–प्रा.डॉ. मंगल कोंडिबा ससाणे.....33
13.रहीम के दोहों में चित्रित मानवीय संवेदना.....35
–प्रा.विश्वनाथ भालचंद्र सुतार.....35
14.'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास की नसीबन में मानवीय संवेदना.....37
–[1]प्रा.सचिन मधुकर कांबळे, [2]प्रा.हसीना अ.मालदार.....37
15.'मुस्कानें हैं ऊपर–ऊपर' में चित्रित मानवीय संवेदना.....38
–[1]डॉ.शेख मुख्त्यार शेख वहाब, [2]श्रीमति मुल्ला राबन खुदाबक्ष,.....38
16.वृंद के दोहों मे चित्रीत मानवीय संवेदना.....41
–[1]प्रा. हरी गोपाळ पोरे,[2]प्रा.सुरेश व्यंकट सावंत.....41
17.प्रेमचंद की कहानियों में मानवीय संवेदना.....43
–डॉ.शाहीन एजाज जमादार.....43
18.प्रभा खेतान के उपन्यासों में मानवीय संवेदना.....44
–डॉ.सुगंधा हिंदुराव घरपणकर.....44
19.प्रभा खेतान की आत्मकथा अन्या से अनन्या में नारी चेतना.....46
–डॉ.मच्छिंद्र कुंभार.....46
20.'बेजगह' कविता में चित्रित स्त्री संवेदना.....49
–हसीना अब्दुलअजीज मालदार,.....49

ISSN 2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

6.मन्नू भंडारी और निरूपमा बरगोहाइञ की आत्मकथाओं में चित्रित मानवीय संवेदना

–कसीरा जहां
सहायक अध्यापक, शोधार्थी, आर०जी०बरुवा महाविद्यालय

भूमिका – 'संवेदना' शब्द संस्कृत शब्द 'संवेग' से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ सुख–दुख का अनुभव, ज्ञान, बोध, प्रतीति इत्यादि है। जिसमें 'आ' प्रत्यय जुड़ने पर 'संवेदना' स्त्रीलिंग शब्द बना है। भाषा शब्द कोश में संवेदना का अर्थ सुख–दुखादि का प्रतीति या अनुभूति बताया गया है। डॉ नगेन्द्र ने संवेदना शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है– "मूलतः संवेदना का ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव अथवा ज्ञान आजकल समान्यतः इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा हैं। मनोविज्ञान में अब भी इस शब्द का प्रयोग मूल अर्थ में ही किया जाता हैं और इस अर्थ में यह किसी बाह्य उत्तेजन के प्रति शरीर तंत्र की सचेतन प्रतिक्रिया होती है। साहित्य में इसका प्रयोग स्नायविक संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं के लिए अधिक होता है। इस प्रकार साहित्य संदर्भ में संवेदनशील मन की प्रतिक्रिया की ही शक्ति है, जिसके द्वारा संवेदनशील व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के सुख–दुख को समझकर उससे अपना तादात्म्य स्थापित का लेता है।"[1]

वास्तव मे संवेदना का संबंध मानव मन से होता है, किसी वस्तु को देखकर मन में तरह तरह के भाव उत्पन्न होते है, वहीं संवेदना हैं। मानव हृदय संवेदनशील होता हैं। वह अपने आस–पास के परिवेश से प्रभावित होकर उसके प्रति संवेदना को विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त करता है। एक साधारण आदमी जहां अपनी संवेदनाओं को रोकर, दुख प्रकट करता है, वहीं एक साहित्यकार अपनी मानवीय संवेदनाओं को अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। मैथलीशरण गुप्त ने 'मनुष्यता' कविता में कहा हैं– यही पशु–प्रवृति है, कि आप आप ही चरे,/ वही मनुष्य है, जो मनुष्य के लिए मरे।

अर्थात अपने आप में विचरण करना पशु–प्रवृति है, मनुष्य तो वहीं है जो मनुष्य के लिए मरे। परहित की भावना जिसमें होती है, वहीं मनुष्य है। साहित्य की प्रत्येक विधा की तरह ही आत्मकथा में भी लेखक की मानवीय संवेदनाएं किसी न किसी रूप मे अभिव्यक्त होती है। क्योंकि लेखक समाज का एक अभिन्न इकाई भी होता है, अतः वह अपने समाज से संबंधविहीन नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में कहा है– "कोई भी लेखक न तो संपर्क सम्बन्धविहीन हो सकता है, न परिवेश–निरपेक्ष, इसलिए उन घटनाओं को तो इसका अनिवार्य हिस्सा होना ही था, जिन्होंने मात्र संवेदना को ही नहीं बल्कि पूरे देश को झकझोर कर रख दिया था। उससे जुड़े वे छोटे–बड़े प्रसंग, जिन्होंने कभी मुझे आहत किया, कभी बेहद क्षुब्ध तो कभी मुझे नासमझ के भ्रम–भंग भी किए। यों भी एक लेखक की यात्रा होती ही क्या है? बस, उसकी दृष्टि परिवार के छोटे से दायरे से निकलकर धीरे–धीरे अपने आसपास के परिवेश को समेटते हुए समाज और देश तक फैलती चलती है। इस प्रक्रिया के दौरान होनेवाले अनुभव उसे केवल समृद्ध ही नहीं करते.... इसकी दृष्टि को साफ और संवेदना को प्रखर भी करते है।"[2]

विश्लेषण – हिन्दी साहित्य जगत की महिला कथाकारों में अपनी विशेष स्थान रखनेवाली मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' का प्रकाशन सन 2007 ई० में हुआ। दूसरी तरफ असमीया कथा साहित्य में अपनी विशिष्ट स्थान रखने वाली कथाकार निरूपमा बरगोहाइञ की आत्मकथा 'बिश्वास आरू संशयर माजेदि' का प्रकाशन सन 1993 ई० में हुआ। दोनों आत्मकथाकारों की आत्मकथाओं में उनकी विचारधाराएँ तथा विशेष परिस्थितियों में उनकी मानवीय संवेदनाओ का चित्रण हुआ है। दोनों कथाकारों ने समाज में स्त्री की स्थिति तथा स्थान का गहराई से विश्लेषण किया है। भारतीय समाज में एक तरफ जहां स्त्री को शक्ति का स्वरूप मानकर उसे विभिन्न रूपों में पुजा जाता है, तो दूसरी तरफ उसकी स्थिति दयनीय है। दोनों ही लेखिकाओं ने समाज में स्त्री की विभिन्न स्थितियों, सामाजिक मुद्दों और राजनीतिक घटनाओं का वर्णन अपनी आत्मकथा में किया है। मन्नू भंडारी ने अपनी माँ के माध्यम से भारतीय परिवारों के अधिकांश महिलाओं की स्थिति को दर्शाया है। भारतीय समाज में ऐसे परिवार भी है, जहाँ स्त्रीयों का स्थान नगण्य है। जो पति के हर ज्यादती सहकर भी मुक है। पति और बच्चों की जरूरतों को पूरा करना ही अपने जीवन का लक्ष्य मानती है। आत्मकथाकार मन्नू भण्डारी ने न केवल अपनी माँ के प्रति ही नहीं बल्कि ऐसी दयनीय स्थिति से ग्रसित उन महिलाओं के प्रति भी अपनी संवेदना व्यक्त करती हुई कहती है –"धरती से कुछ ज्यादा ही धैर्य और सहनशक्ति थी शायद उनमें। पिताजी की हर ज़ुयादतीको अपना प्राप्य और बच्चों की हर उचित–अनुचित फ़रमायश और ज़िद को अपना फ़र्ज समझकर बड़े ही सहज भाव से स्वीकार करती थी वे।"[3] सती प्रथा या जौहर की प्रथा के समाप्त होने के पश्चात भी एक स्त्री का उसके पति की मृत्यु के पश्चात उसके अस्तित्व को लेकर भारी प्रश्नचिन्ह बना हुआ हैं। आत्मकथाकार ने अपनी आत्मकथा में उनके परिवार में रहनेवाली एक विधवा बुढिया जिन्हें वे नानीसा कहकर बुलाती थी का वर्णन किया है। नानीसा घर के सभी के साथ घुलमिल कर एक सदस्य के रूप में रहना चाहती थी, परंतु संकट उस समय होती जब मन्नू भंडारी के पिता खाना खाने नीचे आते। वह समय नानीसा के लिए कष्टकर होता, क्योंकि उस समय उन्हें अपनी कोठरी में बिना किसी से बात किये पाँच–छह घंटे बंद रहना पड़ता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि एक विधवा का जीवन कितना यातनादायक था। बिन बुलाये कहीं भी आने–जाने स्वतन्त्रता नहीं थी। खान–पान, रहन–सहन में कई सामाजिक बंधन थे। अपनी आत्मकथा में नानीसा के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करती हुई आत्मकथाकार कहती है– "रोज पाँच–छह

घंटे बिना किसी से बोले–चाले, बिना कुछ किए धरे, गुमसुम अपनी कोठरी में काटना किसी के लिए कितना कष्टकर हो सकता है, उस समय तो मैंने कभी इसकी कल्पना तक नहीं की।"[4] बचपन के इसी नानीसा के चरित्र को मन्नू भंडारी ने अपनी एक कहानी में सोमा बुआ के रूप में प्रस्तुत किया है। इस कहानी में सोमा बुआ को विधवा के रूप में न दिखा कर एक परित्यक्ता स्त्री के रूप में चित्रित किया है। परित्यक्ता स्त्री को अकेलेपन के दुख के साथ ही उपेक्षा तथा अपमान का दंश भी होता है। हमारे समाज में ऐसी बहुत संख्या में परित्यक्ता स्त्रीयाँ हैं, जिन्हें प्रतिदिन अपमान का दंश सहन करना पड़ता है। लेखिका ने सोमा बुआ के माध्यम से सभी परित्यक्ता स्त्रीयों के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करती हुई कहती है– "यह उपेक्षा उनकी प्रतीक्षा को कितना–कितना दर्दनाक बना देती हैं, इसे पढ़कर ही जाना जा सकता है।"[5] मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' उपन्यास के दो चरित्रों का उल्लेख कर स्त्री अस्मिता तथा बाल मनोविज्ञान पर प्रकाश डाला हैं। उन्होंने शकुन और बंटी दोनों का वर्णन किया। शकुन के व्यक्तित्व और मातृत्व के द्वंद को दिखाया हैं, वहीं बंटी के जीवन त्रासद परिणति का वर्णन किया हैं। शकुन तय नहीं कर पाती हैं, वह किसका पक्ष ले। अगर व्यक्तित्व का पक्ष ले तो मातृत्व वंचित होता हैं, और अगर मातृत्व का पक्ष ले तो व्यक्तित्व कुंठित होता हैं। मन्नू भंडारी के अनुसार शकुन के इस द्वंद की सबसे बड़ी त्रासदी यह है, कि न तो वह पूरी तरह से व्यक्ति बनकर जी सकी और न ही पूरी तरह माँ बनकर। और यह एक स्त्री की त्रासदी नहीं है, बल्कि समाज में ऐसी हजारों महिलाओं की त्रासदी है। मन्नू भंडारी ने माता–पिता के अलगाव के बाद बच्चों की मनोदशा का मार्मिक चित्रण किया हैं। उन्होंने बंटी नामक चरित्र की त्रासदपूर्ण परिणति के प्रति भी अपनी संवेदना व्यक्त करती हैं। वर्तमान समय में पति–पत्नी के टूटते रिश्ते के कारण अधिकांश घरों में ऐसे बंटी का जन्म हो रहा हैं, जिनका भविष्य की अनिश्चयता पर गंभीर चिंता व्यक्त किया हैं। लेखिका ने दोनों ही पात्रों के प्रति संवेदना प्रकट किया हैं।

दूसरी तरफ निरूपमा बरगोहाइञ ने अपनी आत्मकथा बिश्वास आरू संशयर माजेदि' में तत्कालीन समय में घटित विभिन्न सामाजिक तथा राजनीतिक घटनाओं का वर्णन किया है। अपनी आत्मकथा में भी उन्होंने ऐसी कई विषम परिस्थितियों का उल्लेख किया है, जहाँ उन्होंने अपनी संवेदनाएँ अभिव्यक्त करती हैं। उन्होंने समाज में विधवाओं की दयनीय स्थिति खासकर बंगाली समाज में विधवाओं के लिए बने कड़े नियमों के प्रति संवेदना व्यक्त किया हैं। असमीया समाज में भी विधवाओं के नियम थे, परंतु इतने कड़े नहीं थे। अपनी आत्मकथा में एक स्थान पर उन्होंने बंगाली समाज में विधवाओं के जीवन यापन का उल्लेख किया हैं। उन्होंने लिखा हैं– "बाङालीसकलर कि बामुण कि अईन जातर सकलो तिरोताई विधवा होवार पिछत कठोर वैधव्यव्रत पालन करिछिल, तार एक अनुसंग है, माछ–मांस–कणी, पियाज वर्जन।"[6] (अर्थात बंगाली लोग क्या ब्रह्मण क्या अन्य जाति सभी महिलाएँ विधवा होने पर कठोर वैधव्यव्रत का पालन करती थी, उसका एक उदाहरण हैं, मांस–मछली–अंडा, प्याज का वर्जन।) आत्मकथाकार ने उनके प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते है। निरूपमा बरगोहाइञ ने कई राजनीतिक गतिविधिओं का उल्लेख किया है, जिनमें सन 1980 ई. के असम आन्दोलन का उल्लेखनीय हैं। उस आन्दोलन की विभीषिका, आतंक, खुन–खराबे का उल्लेख किया है। असम से बांग्लादेशी खदेड़ने की प्रक्रिया में जो भारी रक्तपात हुआ उसकी निंदा की थी। युद्ध के समय मनुष्य किस प्रकार मानवीय संवेदना से हीन हो जाता है, इसका भी उल्लेख किया हैं। उन्होंने एक अधजले शिशु का उल्लेख करते हुए उनका हृदय यंत्रणा से भर उठता हैं। उन्होंने एक स्थान पर उल्लेख किया है– "आजिर असमत मारपिट, हत्या एक दैन्यदिन घटनात परिणत होवात आमि जनसाधारण सेइबिषये प्राय निर्विकारर दरे होछो (क्या अमानवीय परिणति!), किन्तु तेतिया आमार मनबोरत मानवताबोध जाग्रत हो थाकिछिल।"[7] (अर्थात आज असम में मारपिट, हत्या, एक दैन्यदिन घटना के रूप में परिणत होने पर हम जनसाधारण इन विषयों के प्रति निर्विकार हो गए है (कितना अमानवीय परिणति), किन्तु उस समय हमारे मन में मनवाताबोध जाग्रत थी)

लेखिका ने उस युद्ध के समय डॉक्टर के एक दल को इसलिए कड़े शब्दों में फटकारा क्योंकि वे घायल बांग्लादेशियों का इलाज करने से साफ माना कर दिया था। लेखिका का यह मानना था कि चिकित्सा जैसी पवित्र वृति में भेदभाव का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। लेकिन डॉक्टर के उस दल को यह लगा कि निरूपमा बरगोहाइञ बंगलादेशीयों की सहायता कर रही है, जिसके कारण उन्होंने उनके लिए अश्लील शब्दों का प्रयोग किया। यहाँ तक की उन्हें असम विरोधी भी कहा गया। मन्नू भंडारी ने कई भी अपने तत्कालीन समय की कई राजनीतिक गतिविधिओं का उल्लेख किया है। उन्होंने सिखों और हिंदुओं के बीच हुए भयावह दंगे का वर्णन किया हैं। मन्नू भंडारी के अनुसार कारण कोई भी क्यों न हो लेकिन युद्ध या दंगा कभी भी मानवता का पक्षधर नहीं होता। उन्होंने इस तरह की घटनाओं को अमानवीय बताया है। अपनी आत्मकथा में उन्होंने कहा है–"कोई भी संवेदनशील व्यक्ति उसका समर्थन कर सकता है भला? बल्कि मै तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि समर्थन करने वाला व्यक्ति अपने को मनुष्य कहने का अधिकार भी रखता है क्या?"[8]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि साहित्य का मूल आधार मानवीय संवेदना है। मन्नू भंडारी और निरूपमा बरगोहाइञ दोनों ही कथाकारों की आत्मकथाओं उनकी अभिव्यक्ति में संवेदना का पक्ष प्रबल दिखाई पड़ता है। दोनों ही कथाकारों ने मानव–मूल्यों को समाज में स्थापित करने का प्रयत्न किया हैं तथा मानव–जीवन के उद्धार का मार्ग प्रशस्त किया है। मन्नू भंडारी और निरूपमा बरगोहाइञ की आत्मकथा में अनेक रूपों में प्रकट होने वाली मानवीय संवेदना, पाठकीय संवेदना को जागृत

ही नहीं करती बल्कि उस दिशा में पाठकों को सोचने को विवश भी करती हैं।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

(1)सूर्यबला की कहानियों में मानवीय संवेदना, आंध्र यूनिवरसिटि, 2019, पृष्ठ सं–3
(2)भंडारी, मन्नू, एक कहानी यह भी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2007, पृ सं–9
(3)भंडारी, मन्नू, एक कहानी यह भी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2007, पृ सं–19
(4)भंडारी, मन्नू, एक कहानी यह भी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2007, पृ सं–43
(5)भंडारी, मन्नू, एक कहानी यह भी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2007, पृ सं–43
(6)बरगोहाइञ, निरूपमा, बिश्वास आरू संशयर माजेदि, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 1995, पृ सं–142
(7)बरगोहाइञ, निरूपमा, बिश्वास आरू संशयर माजेदि, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 1995, पृ सं–265
(8)भंडारी, मन्नू, एक कहानी यह भी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2007, पृ. सं–161

7.सुधाकर मिश्र की कविताओं में चित्रित मानवीय संवेदनाएँ

–[1]विकास सुरेश शेटे, [2]डॉ.अशोक मोहन मस्के

[1](सहायक शिक्षक)एम.ए.,बी.एड., एम.फिल.हुतात्मा किसन अहिर माध्यमिक एवंउच्च माध्यमिक विद्यालय, वाळवा,जिला–सांगली

[2]एम.ए.,एम.फिल.,पीएच.डी.हिंदी विभाग, मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय, इस्लामपुर,

संवेदना मानवी जीवन का अभिन्न अंग है। संवेदना सभी प्रकार की सृजनशीलता की नींव है।वह केवल मनुष्य में ही नहीं बल्कि पशु–पंछियों में भी पाई जाती है। गहरीसंवेदनाऔर गहरीसाहित्यिकसोच से श्रेष्टतम साहित्य की रचना होती हैं। मनुष्यता की निशानी है संवेदना। कवि अधिक संवेदनशील होते हैं। वे अपनी पीड़ा कम–से–कमशब्दों में व्यक्त करने में निपुण होते हैं। संवेदनाओं को बरकरार रखने में कविता महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। कठोर, निर्ममएवं असवेंदनशील लोगों में कविता संवेदना के बीज बोने का काम करती है।कवि की अन्तस चेतना की अभिव्यक्ति ही कविता है। कवि समाज का प्रहरी होता है। वेदना, पीड़ा, दुखही उसकी पूँजी होती है।कवि सुधाकर मिश्र सवेंदनाओं से ओतप्रोत भरे हैं। वेव्यक्तिगत पीड़ा के साथ–साथ सामाजिक पीड़ा को भी अपनी कविताओं में स्थान देते हैं। उनकी कविताओं में समाज के हर तबके के व्यक्तिओं की पीड़ा को स्थान मिला हैं।उनकी कविताएँ केवल पीडाओं को अभिव्यक्त नहीं करती बल्कि उससेमुक्ति पाने की राह भी बताती है।संवेदनाएँ कहीं से उधर नहीं ली जाती वे कवि की अपनी पूँजी होती हैं। कवि सुधाकर मिश्र सामाजिक सवेंदानाओं के प्रतिअधिक सजग दिखाईदेते हैं। वे अपनी रचनाओं के माध्यम सामाजिक एकता का संदेश दे रहे हैं।उन्होंने अपने पूरे जीवन के अनुभवोंके निचोड़ को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है।भूमंडलीकरण के बाद पूरी दुनिया में निजीकरण का दौर शुरू हुआ।निजीकरण के कारण भारतीय समाज व्यवस्था में काफी परिवर्तन हुए। कवि इस परिवर्तन के दौर से गुजर चुके हैं। मानसिक उथलपुथल का यह दौर रहा है। उन्होंनेइस मानसिक उथलपुथल को अपनी वेदनाओं की दृष्टि से देखा है इसलिए उनकी कविताएँ वेदनाओं के प्रतीक बनी हुई है।

संवेदना, अभिव्यक्ति, अन्तस चेतना, वेदना, पीड़ा, दर्शन, अनुभूति, बोध, सहानुभूति, मनुष्यता आदि। किसीकी वेदना देखकर अपने मन में उत्पन्न होने वाली वेदना को 'संवेदना'कहते हैं। संवेदना में'सम' उपसर्ग है जिसका अर्थ है– 'साथ', 'सामीप्य' , 'आधिक्य' आदि। इस प्रकार संवेदना का अर्थ हुआ– 'समान वेदना'। संवेदना काएक और अर्थ होता है 'प्रत्यक्ष ज्ञान'।पवन चौधरी 'मनमौजी' के अनुसार " कवि और कविता एक ही कुदरत के दो रूप है।... कवि केवल अपने ही अन्तस में रहता है, कविता की कोख ही में धूनी–सी लगाए रहता है।"[1]

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed Journal

राष्ट्रसेवक

वर्ष : 73 ❖ अंक : 11 ❖ फरवरी, 2024



RNI NO. ASSBIL/2009/31008

ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 73 अंक : 11 फरवरी, 2024

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

डॉ. किरण हाजरिका
सम कुलपति, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली-68

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
काजी रोड, गंगटोक, सिक्किम - 737101

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

ाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी		
1.	*संपादकीय*		5
2.	भीष्म साहनी द्वारा रचित 'तमस' उपन्यास में भारत विभाजन की त्रासदी का विवेचन	✍ डॉ. अशोक कुमार	7
3.	असम की चाय जनगोष्ठी : एक सांस्कृतिक अवलोकन	✍ डॉ. नंदिता दत्त	11
4.	भूटिया भाषा-साहित्य चिंतन	✍ डॉ. चुकी भूटिया	16
5.	विज्ञापन का भाषिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य	✍ मनोज मल्लाह ✍ डॉ. अनुशब्द	20
6.	मणिपुरी लोक कथा : समाज का मूल आधार	✍ डॉ. वाइखोम चींखैडानबा	26
7.	मणिपुरी भाषा का योगदान (साहित्य के संदर्भ में)	✍ डॉ. कोंखाम फूल्लोना देवी	32
8.	भठेलि लोकोत्सव	✍ कसीरा जहाँ	36
9.	इक्कीसवीं सदी की प्रमुख हिंदी महिला रचनाकारों की आत्मकथा : एक विहंगम दृष्टि	✍ सुमि शर्मा	41
10.	मंगलेश डबराल की कविताओं में समकालीन संवेदना के विविध आयाम	✍ सूर्जलेखा ब्रह्म	45
11.	भारतीय नेपाली साहित्य और संत-काव्य परंपरा	✍ डॉ. गोमा देवी शर्मा	50
12.	निराला के उपन्यासों में नारी की सामाजिक समस्या	✍ गजेन्द्र नाथ दास	56
13.	राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम और संत गंगादास : एक ऐतिहासिक विश्लेषण	✍ कीर्ति चौधरी ✍ डॉ. दीपक कुमार	63
14.	समाजशास्त्र और साहित्य : एक विचार	✍ पूजा शर्मा ✍ डॉ. वंदना शर्मा	68

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

संस्कृति

भठेलि लोकोत्सव



कसीरा जहाँ

शोध सार :

'उत्सव' शब्द के साथ 'लोक' उपसर्ग जुड़ने पर 'लोकोत्सव' शब्द बना है। 'उत्सव' यानी त्योहार और 'लोक' यानी जनजीवन। अर्थात लोकोत्सव का अर्थ हुआ जनजीवन में मनाया जाने वाला त्योहार। परंपरागत रूप में कृषिजीवी समाज व्यवस्था आचार-व्यवहार, पूजा-पर्व, रीति-नीति, गीत इत्यादि मुख्य उपादानों को लेकर समय-सापेक्ष जनजीवन जिन अनुष्ठानों का पालन करती है, उसे ही उत्सव कहा जाता है। मनुष्य उत्सव प्रेमी है, अत: वह जीवन के प्रत्येक स्तर पर या पड़ाव पर होने वाले परिवर्तन को उत्सव का रूप देता हैं। इन उत्सवों के पालन से जनजीवन को शारीरिक एवं मानसिक विराम तथा आनंद ही नहीं प्राप्त होता, बल्कि सामाजिक सुख का भी एहसास होता है। ये लोकोत्सव मानव जीवन में आशा एवं उत्साह का संचार करते हैं।

'भठेलि' एक लोकोत्सव है, जो असम के कामरूप जिले में ब्रह्मपुत्र नद के त पर गुवाहाटी महानगरी से लगभग 24 किलोमीटर की दूरी पर स्थित 'हाजो' ना स्थान से मात्र 3 किलोमीटर पर अवस्थित 'रामदिया' नामक स्थान में मनाया ज है। यह एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थान है, जिसके कारण यह पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र बिंदु भी है। 'रामदिया' नामक स्थान विभिन्न धर्म, वर्ण, संप्रदाय के लोगों से भरा एक छोटा गाँव है। इस गाँव को हिंदू धर्मावलंबी तथा मुसलमान धर्मावलंबी का समन्वय स्थली भी कहा जाता है। 'भठेलि' लोकोत्सव का धार्मिक तथा सामाजिक महत्व है। यह मात्र उत्सव ही नहीं, बल्कि समन्वय का प्रतीक है।

बीज शब्द :

लोक, लोकोत्सव, भठेलि, जनजीवन, लोक-संस्कृति आदि।

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग
राधा गोविंद बरुवा महाविद्यालय
फटाशील आमबाड़ी, गुवाहाटी-25
✆ 9707197734
✉ rubijahan81@gmail.com

प्रस्तावना :

'भठेलि' शब्द की उत्पत्ति को लेकर काफी मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार 'भठेलि' शब्द 'भाठि' शब्द से बना है तो कुछ विद्वानों ने भठेलि शब्द की व्युत्पत्ति 'भटियालि' शब्द से माना है। वहीं कुछ विद्वानों ने भठेलि शब्द 'भूईथली' शब्द से उत्पन्न हुआ मानते हैं। डॉ. बाणीकांत काकति ने भठेलि शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'भस्तली' या 'भस्तलिका' शब्द से माना है, जो रूपांतरित होकर असमीया

भाषा में भठेलि के रूप में व्यवहृत होता है। वहीं, डॉ. प्रमोदचंद्र भट्टाचार्य ने भी 'भठेलि' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'भस्तलिका' से माना है।

उत्तर कामरूप की विभिन्न जगहों पर भठेलि उत्सव का पालन किया जाता है, परंतु वहाँ पालन किए जाने वाले भठेलि उत्सव के नियमों में काफी अंतर दिखाई पड़ता है। उत्तर कामरूप की ओर भठेलि उत्सव में दो बाँसों को लिया जाता है। एक लंबा और एक छोटा बाँस। दोनों बाँसों को वर-वधू के प्रतीक के रूप में लिया जाता है। वर को शिव का प्रतीक माना जाता है। इस प्रक्रिया को 'पारा' या 'पाउरा' कहा जाता है, किंतु रामदिया के भठेलि लोकोत्सव में 'पारा' या 'पाउरा' की व्यवस्था नहीं है। यही मूल अंतर है। वास्तव में रामदिया का भठेलि उत्सव तो धार्मिक परिप्रेक्ष्य में लोक परंपरागत उत्सव है। यह श्रीश्री माधवदेव के विदाई समय, तिथि या तारीख को भठेलि उत्सव का मूल माना जाता है। इसी कारणवश उत्तर कामरूप के अन्य स्थानों के भठेलि उत्सव तथा रामदिया के भठेलि उत्सव में काफी अंतर पाया जाता है।

प्रासंगिकता :

असम विभिन्न जाति तथा जनजातियों से भरा प्रदेश है। सभी जाति तथा जनजातियों के अपने लोक गीत, लोकोत्सव, लोक कथाएँ तथा लोक मान्यताएँ हैं, जो यहाँ की धरोहर हैं। किसी स्थान विशेष की लोक-संस्कृति ही वहाँ के जातीय स्मृति का संवाहक होती है। अत: इनका लिखित रूप में संरक्षित करना आवश्यक है।

अध्ययन में व्यवहृत पद्धति :

प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अवतरण एवं ग्रंथ-सूची आधुनिक भाषा संस्था (Modern Language Association) के अनुसार रखे गए हैं।

विश्लेषण एवं निर्वचन :

'भठेलि' लोकोत्सव के विषय में जानने से पहले इसके इतिहास के बारे में जानना आवश्यक है। कहा जाता है कि 1600वीं सदी के अंतिम दशक में कोच नरपति (राजा) रघुदेव के आदेशानुसार बरपेटा से श्रीश्री माधवदेव भक्तों सहित हाजो नामक स्थान में आए। बरपेटा में रहने के दौरान उन्होंने नव-वैष्णव धर्म का प्रचार करना प्रारंभ किया। उसी समय नव-वैष्णव धर्म के विरोधी उनके विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे थे और उन लोगों ने श्रीश्री माधवदेव के विरुद्ध राजा के कानभर दिए। फलत: राजा रघुदेव ने उन्हें दंड के तौर पर रामदिया जाने का आदेश दिया। राजा के आदेशानुसार माधवदेव श्रीराम आता सहित एक भक्त दल के साथ जलमार्ग (ब्रह्मपुत्र) से नाव में सवार होकर रामदिया पहुँचे। उनके रामदिया आने के प्रसंग का इस प्रकार उल्लेख है -

''हाजोर नामे रामदिया बालात चै-गृह रल''

(मजूमदार : पृष्ठ संख्या-84, 2018)

(अर्थात हाजो नामक रामदिया की बालुई सतह पर गृह बनाकर रहने लगे।)

चै गृह (नदी के किनारे बनाया जाने वाला विशेष प्रकार का घर) बनाकर रहने के दौरान पुन: धर्म प्रचार में निमग्न हो गए। रामदिया में अनगिनत भक्त समाज को पाकर बरपेटा के षड्यंत्र की बात को भूल ही गए। श्रीश्री माधवदेव ने रामदिया में धर्म प्रचार के साथ सत्र की स्थापना भी की थी, जिसका उल्लेख 'चरित पुथि' में है।

''हाजो समीपत ग्राम नामे रामदिया।
तहिते रहिला पाछे सत्रक करिया।''

(मजूमदार : पृष्ठ संख्या-84, 2018)

(अर्थात हाजो के समीप का गाँव, जिसका नाम रामदिया है। वहाँ रहे और बाद में सत्र की स्थापना की।)

श्रीश्री माधवदेव रामदिया में 6 महीने तक रहे, जिसका उल्लेख विभिन्न ग्रंथो में पाया जाता है।

कहा जाता है कि माधवदेव रामदिया नामक स्थान में छह महीने तक रहे। यहाँ रहने के दौरान उन्होंने नव-वैष्णव धर्म के प्रचार के साथ ही सत्रों की स्थापना भी की। रामदिया में रहने के दौरान श्रीश्री माधवदेव ने कई बरगीत और घोषा की रचना की। श्रीमंत शंकरदेव के रुक्मिणी हरण नाट, माधवदेव के अर्जुन-भंजन (दधि मथन), भोजन-बेहार आदि नाट भावना (नृत्य नाटिका जो नामघर में मंचित किया जाता है) को मंचित किया था। बाद में लक्ष्मीनारायण आईधा, जो वेहार (वर्तमान में कोचबिहार) के राजा ने माधवदेव से वेहार यानी कोचबिहार जाने के लिए बहुत ही अनुरोध किया। लक्ष्मीनारायण आईधाम की

भाषा में भठेलि के रूप में व्यवहृत होता है। वहीं, डॉ. प्रमोदचंद्र भट्टाचार्य ने भी 'भठेलि' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'भस्तलिका' से माना है।

उत्तर कामरूप की विभिन्न जगहों पर भठेलि उत्सव का पालन किया जाता है, परंतु वहाँ पालन किए जाने वाले भठेलि उत्सव के नियमों में काफी अंतर दिखाई पड़ता है। उत्तर कामरूप की ओर भठेलि उत्सव में दो बाँसों को लिया जाता है। एक लंबा और एक छोटा बाँस। दोनों बाँसों को वर-वधू के प्रतीक के रूप में लिया जाता है। वर को शिव का प्रतीक माना जाता है। इस प्रक्रिया को 'पारा' या 'पाउरा' कहा जाता है, किंतु रामदिया के भठेलि लोकोत्सव में 'पारा' या 'पाउरा' की व्यवस्था नहीं है। यही मूल अंतर है। वास्तव में रामदिया का भठेलि उत्सव तो धार्मिक परिप्रेक्ष्य में लोक परंपरागत उत्सव है। यह श्रीश्री माधवदेव के विदाई समय, तिथि या तारीख को भठेलि उत्सव का मूल माना जाता है। इसी कारणवश उत्तर कामरूप के अन्य स्थानों के भठेलि उत्सव तथा रामदिया के भठेलि उत्सव में काफी अंतर पाया जाता है।

प्रासंगिकता :

असम विभिन्न जाति तथा जनजातियों से भरा प्रदेश है। सभी जाति तथा जनजातियों के अपने लोक गीत, लोकोत्सव, लोक कथाएँ तथा लोक मान्यताएँ हैं, जो यहाँ की धरोहर हैं। किसी स्थान विशेष की लोक-संस्कृति ही वहाँ के जातीय स्मृति का संवाहक होती है। अत: इनका लिखित रूप में संरक्षित करना आवश्यक है।

अध्ययन में व्यवहृत पद्धति :

प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अवतरण एवं ग्रंथ-सूची आधुनिक भाषा संस्था (Modern Language Association) के अनुसार रखे गए हैं।

विश्लेषण एवं निर्वचन :

'भठेलि' लोकोत्सव के विषय में जानने से पहले इसके इतिहास के बारे में जानना आवश्यक है। कहा जाता है कि 1600वीं सदी के अंतिम दशक में कोच नरपति (राजा) रघुदेव के आदेशानुसार बरपेटा से श्रीश्री माधवदेव भक्तों सहित हाजो नामक स्थान में आए। बरपेटा में रहने के दौरान उन्होंने नव-वैष्णव धर्म का प्रचार करना प्रारंभ किया। उसी समय नव-वैष्णव धर्म के विरोधी उनके विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे थे और उन लोगों ने श्रीश्री माधवदेव के विरुद्ध राजा के कानभर दिए। फलत: राजा रघुदेव ने उन्हें दंड के तौर पर रामदिया जाने का आदेश दिया। राजा के आदेशानुसार माधवदेव श्रीराम आता सहित एक भक्त दल के साथ जलमार्ग (ब्रह्मपुत्र) से नाव में सवार होकर रामदिया पहुँचे। उनके रामदिया आने के प्रसंग का इस प्रकार उल्लेख है -

"हाजोर नामे रामदिया बालात चै-गृह रल"

(मजूमदार : पृष्ठ संख्या-84, 2018)

(अर्थात हाजो नामक रामदिया की बालुई सतह पर गृह बनाकर रहने लगे।)

चै गृह (नदी के किनारे बनाया जाने वाला विशेष प्रकार का घर) बनाकर रहने के दौरान पुन: धर्म प्रचार में निमग्न हो गए। रामदिया में अनगिनत भक्त समाज को पाकर बरपेटा के षड्यंत्र की बात को भूल ही गए। श्रीश्री माधवदेव ने रामदिया में धर्म प्रचार के साथ सत्र की स्थापना भी की थी, जिसका उल्लेख 'चरित पुथि' में है।

"हाजो समीपत ग्राम नामे रामदिया।
तहिते रहिला पाछे सत्रक करिया।"

(मजूमदार : पृष्ठ संख्या-84, 2018)

(अर्थात हाजो के समीप का गाँव, जिसका नाम रामदिया है। वहाँ रहे और बाद में सत्र की स्थापना की।)

श्रीश्री माधवदेव रामदिया में 6 महीने तक रहे, जिसका उल्लेख विभिन्न ग्रंथो में पाया जाता है।

कहा जाता है कि माधवदेव रामदिया नामक स्थान में छह महीने तक रहे। यहाँ रहने के दौरान उन्होंने नव-वैष्णव धर्म के प्रचार के साथ ही सत्रों की स्थापना भी की। रामदिया में रहने के दौरान श्रीश्री माधवदेव ने कई बरगीत और घोषा की रचना की। श्रीमंत शंकरदेव के रुक्मिणी हरण नाट, माधवदेव के अर्जुन-भंजन (दधि मथन), भोजन-बेहार आदि नाट भावना (नृत्य नाटिका जो नामघर में मंचित किया जाता है) को मंचित किया था। बाद में लक्ष्मीनारायण आईधा, जो वेहार (वर्तमान में कोचबिहार) के राजा ने माधवदेव से वेहार यानी कोचबिहार जाने के लिए बहुत ही अनुरोध किया। लक्ष्मीनारायण आईधाम की

भक्ति तथा कातर अनुरोध की रक्षा करने हेतु माधवदेव को वेहार जाना पड़ा। दैत्यारि ठाकुर कृत महापुरुष श्री शंकरदेव और श्री माधवदेव चरित में इसका उल्लेख मिलता है।

"किनो महाभाग्य मिलि आछे वेहरार।
मिलिला दुर्भाग्य कामरूपी लोकर।"

(मजूमदार : पृष्ठ-21, 2001)

(अर्थात वेहार का महाभाग्य है, जो श्री माधवदेव वहाँ जाने के प्रस्तुत हुए हैं और कामरूप निवासियों का दुर्भाग्य है, जो उन्हें छोड़कर जा रहे हैं।)

इस संवाद से उनके भक्तों में एक विषाद की भवाना छा गई। चारों ओर से असंख्य भक्तों का समागम हुआ। यह समय रामदिया तथा वहाँ के निवासियों के लिए एक करुण दिन था, लेकिन उनके पास कोई समाधान नहीं था। वह दिन वैशाख महीने की 6 तारीख थी और उनके भक्त उनसे न जाने की विनती कर रहे थे। भक्तों की इस वेदना को भलीभाँति समझ रहे थे, परंतु उनका जाना तय था। अत: भक्तों को आशीर्वाद देकर श्रीश्री माधवदेव वहाँ से विदा हुए। वे जलमार्ग से नाव में बैठकर वेहार राज्य के लिए रवाना हुए थे, जिसका उल्लेख दैत्यारि ठाकुर के श्री शंकरदेव और श्री माधवदेव चरित में मिलता है। श्रीश्री माधवदेव को विदा करने के लिए भक्तों की बड़ी भीड़ खोल (वाद्ययंत्र), ताल (वाद्ययंत्र) आदि वाद्ययंत्रों के साथ भठेलि खोला तक आई थी। उसी स्थान से श्रीश्री माधवदेव को विदाई दी गई। कुछ लोगों का मानना है कि श्रीश्री माधवदेव का रामदिया से चले जाने की स्मृतिस्वरूप ही रामदिया के भठेलि का जन्म हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 16वीं सदी या वैष्णव युग में भठेलि उत्सव का जन्म हुआ है। वैशाख की 6 तारीख को मनाए जाने के कारण इसे सातबिहू भी कहा जाता है। श्रीश्री माधवदेव के रामदिया छोड़ वेहार नामक स्थान जाने के बाद ही रामदिया के भठेलि में धर्मीय प्रभाव दिख पड़ा।



रामदिया का भठेलि उत्सव तीन दिवसीय है। यह वैशाख की 5 तारीख से प्रारंभ होता है। वैशाख की 5 तारीख को सत्र (एक विशेष संस्थागत केंद्र है, जो एक शरण धर्म की परंपरा का प्रसार करता है) समूहों में नाम-प्रसंग (ईश्वर का नाम स्मरण) आरंभ होता है। साथ ही पूरे वर्ष का हिसाब-किताब भी किया जाता है। इन सत्र समूहों में दीया जलाने के लिए प्रत्येक घर से तेल लेने की यहाँ परंपरागत प्रथा है। वर्तमान में भठेलि उत्सव का उद्घाटन किया जाता है, जो पहले नहीं था। उस दिन धूला यानी धूलापारा (स्थान का नाम) के सत्र वाला यानी रामदिया लाया जाता है। वहाँ दूसरे दिन से तीन दिवसीय एक मेला भी लगता है। अत: विभिन्न स्थानों के व्यापारी भी अगले दिन ही वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। वैशाख की 6 तारीख को मूल उत्सव की शुरुआत होती है। उस दिन भिन्न-भिन्न स्थानों से भठेलि उत्सव देखने हेतु लोग आते हैं। पूरा रामदिया दर्शनार्थियों से भर जाता है। चारों ओर लोकारण्य ही लोकरण्य। रामदिया उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के खेल के मैदान में ही इस उत्सव का पालन किया जाता है। मेला भी इसी जगह लगता है। उस दिन प्रत्येक घर के सामने एक वेदी या ढाप बनाई जाती है। मिट्टी से सने उस वेदी के किनारे ही कोमल केले के पत्ते के ऊपर शराई (काँस धातु से निर्मित विशेष बर्तन, जो धार्मिक कार्यों में व्यवहृत किया जाता है) रखा जाता है। उस शराई में चावल या मननी (ईश्वर के नाम पर अर्पित पैसा) रखा जाता हैं। उस दिन घर के सभी सदस्य गोसाईं (ईश्वर) की प्रार्थना या भक्ति कर आशीष लेते हैं। उसी दिन दोपहर 12 बजे विभिन्न सत्रों (शंकरी, दामोदरी और चैतन्य पंथी) से कुल 15 गोसाईं (ईश्वर) को धुला यानी धुलापारा से बाला यानी रामदिया में ढोल-खोल (वाद्ययंत्रों) बजाकर आदर सम्मान के साथ लाया जाता है। गोसाईं के आगे छोटे-छोटे बच्चे हाथों में दंड (लकड़ी से निर्मित डंडा) जिसके ऊपर पीतल की टोपी होती हैं) लेकर आदर, सम्मान तथा भक्ति

सहित गंतव्य स्थान तक पहुंचते हैं। आरंभिक अवस्था में कुछ दस सत्रों को लाया जाता था, इसके पश्चात इसकी संख्या 12 हुई और वर्तमान में 15 सत्रों को लाया जाता है। गोसाईं के आगे-पीछे गायन-बायन (गायन-बायन धार्मिक नृत्य है, जो सातरस में शंकरदेव के शिष्यों या भक्तों द्वारा सत्रों में गाया बजाया जाता है, जिसमें गाने वाले को गायन और बजाने वाले को बायन कहा जाता है) तथा आयती (साधवी महिलाएँ) होती हैं। गाँव के बीच से गुजरते समय गाँववासी गोसाईं (ईश्वर) का आशीर्वाद लेते हैं तथा निर्माली ग्रहण करते हैं। पूरा वातावरण मनोरम तथा भक्तिमय हो जाता है। भठेलि खोला (उत्सव स्थली) में पूर्व से पश्चिम दिशा में पक्का मंडप बना दिया गया है, जहाँ 15 सत्रों से लाए गए गोसाईं को रखा जाता है। परंतु पहले वेदी बनाकर चार कोमल बाँस को रंगीन कपड़ो से बाँधकर मिट्टी की वेदी के चारों ओर बाँधा जाता है, और उसके ऊपर 15 सत्रों से लाए गए गोसाईं को रखा जाता है।

'बाला' या भठेलि खोला (उत्सव स्थली) में लाए जाने वाले सत्रों में-धूला सत्र, बगरीबारी सत्र, शिशुर सत्र, राम लक्ष्मण सत्र, बासुदेव सत्र, विष्णुपुर सत्र, नरनारायण सत्र, लेंगटा गोपीनाथ सत्र, हाथभंगा सत्र, मेघनारायण सत्र, बासुदेव बालि सत्र, लाडुवा गोपाल सत्र, वंशी गोपाल सत्र और चैतन्य सत्र, गोपीबल्लभ सत्र शामिल हैं।

उस समय अनगिनत दर्शक और भक्त गोसाईं (ईश्वर) की आराधना कर नववर्ष के लिए आशीष लेते हैं। गोसाईं की एक झलक पाने को और उनकी भक्ति करने के लिए लोगों में होड़ लग जाती है। भक्ति निवेदन के समय प्रत्येक भक्त जन अपने सामर्थ्य अनुसार रुपए-पैसे तथा माला आदि भेंट करते हैं। उल्लेखनीय विषय यह है कि भक्तों को निर्माली के रूप में गुलाल या अबीर दिया जाता है। यह प्रथा भी अपने आप में विरल है। उसी दिन संध्या होने से पूर्व ही सारे सत्रों को वापस ले जाया जाता है। गोसाईं को सत्रों में वापस ले जाते समय साथ जाने वाले लोग वहाँ के स्थानीय लोगों के घरों के बगीचे से आठीया केले (केले की एक प्रजाति है, जो आकार में मोटा होती है) के थोक (गुच्छा) भी काटकर ले जाते हैं। गोसाईं को सत्रों में प्रवेश करवाने से कुछ क्षण पूर्व वहाँ मौजूद लोग परस्पर एक-दूसरे की ओर केले फेंकते हैं। यह प्रथा भी बहुत ही निराली है। गोसाईं को सत्र में प्रवेश कराने से पूर्व वहाँ मौजूद लोग एक कपड़ा खींचकर दो दलों मे विभक्त हो परस्पर एक-दूसरे के साथ तर्क-वितर्क करते हैं। इसके पीछे लोक विश्वास यह है कि गोसाईं और गोसाईन (अर्थात उनकी पत्नी) में तर्क-वितर्क होता है। कारण यह माना जाता है कि गोसाईं-गोसाईनी को बिना बताए घूमने आते हैं, जो गोसाईनी को पसंद नहीं आता। सात वैशाख अर्थात वैशाख की सात तारीख को भठेलि उत्सव का अंतिम दिन माना जाता है, जिसे भंगा भठेलि (टूटा हुआ भठेलि) कहा जाता है। उस दिन भठेलि खोला (उत्सव स्थली) को छोड़कर अन्य अनुष्ठान का आयोजन नहीं किया जाता है। उस दिन गाँव के कुछ सत्र विग्रह को पूरे गाँव में घुमाया जाता है। इसे गोसाईं फुरनी (ईश्वर का घूमना) कहा जाता है। लोक विश्वास है कि ऐसा करने पर गाँव में आने वाली बाधा या अमंगल का नाश होता है।

भठेलि उत्सव के दो दिन अर्थात 6 और 7 वैशाख को मेला लगता है। रामदिया में रहने वाले लोगों को छोड़कर निकटवर्ती स्थानों में रहने वाले लोग भी मेला देखने आते हैं। रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग होने वाली उपयोगी वस्तुओं से लेकर कपड़े, गहने, मिठाई, बच्चों के खिलौने साथ ही किताबें भी पाई जाती हैं। इस मेले से ही लोग अपनी आवश्यकतानुसार चीजों को खरीदते हैं।

विभिन्न धर्मों का मिलन सेतु, विभिन्न लोगों का समागम और भातृत्वबोध ही इस लोक उत्सव का मूलमंत्र है। 'भठेलि' लोकोत्सव मात्र लोकोत्सव की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि कई दृष्टियों से विशेष महत्व रखता है। भठेलि लोकोत्सव के महत्व को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत रखने का प्रयास किया गया हैं-

। धार्मिक महत्व :

धार्मिक दृष्टि से यह लोकोत्सव बहुत ही महत्व रखता है। इस तरह एक ही मंच पर 15 जगहों के गोसाईं (ईश्वर) की एक साथ पूजा-अर्चना करने का उदाहरण बहुत ही विरल है।

। सामाजिक महत्व :

इस लोकोत्सव के जरिए यहाँ के स्थानीय लोगों के साथ-साथ यहाँ व्यवसाय करने वाले लोगों के बीच भातृत्वभाव बढ़ता है, जो जीवन को सुचारू रूप से

चलाने में मदद करता है। समाज को एकता का महत्व सिखाता है।

आर्थिक महत्व :

अर्थनैतिक दृष्टि से भठेलि लोकोत्सव बहुत महत्व रखता है। इस लोकोत्सव के जरिए लोग अपनी-अपनी लघु मात्रा में उत्पादित सामग्री को भठेलि मेले में बेचकर अर्थनैतिक दृष्टि से सबल बन पाते हैं। यह लोकोत्सव इस अंचल की महिलाओं को स्वावलंबी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यही कारण है कि महिला समाज इस लोकोत्सव का व्याकुलता से प्रतीक्षा करता है। क्षुद्र व्यवसाय करने वाले शिल्पियों के लिए भठेलि मेला बहुत बड़ा बाजार है, जहाँ वे अपनी उत्पादित सामग्री को बेचकर आर्थिक रूप से लाभान्वित होते हैं। कुछ शिल्प जो विलुप्त प्राय: होते चले जा रहे हैं, वे शिल्प इस भठेलि मेले में देखने को मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप, कमार शिल्प, कुंभार शिल्प, वस्त्र शिल्प, जूट शिल्प, काँस-पीतल की सामग्री आदि।

नैतिक महत्व :

नैतिक दृष्टि से भी इस लोकोत्सव का विशेष महत्व है। यह लोकोत्सव धार्मिक चेतना केंद्रित है, इसीलिए समाज में धार्मिक जागरण पैदा करने में एक विशेष महत्व रखता है। लोगों में यह विश्वास अभी भी है कि इस उत्सव का अच्छी तरह से पालन करना समाज के लिए मंगलदायक है।

आनंदबोध :

भठेलि लोकोत्सव लोगों में आनंद का बोध भी कराता है। भठेलि उत्सव के तीनों दिन सभी के हृदय को उमंग, उल्लास तथा पवित्रता से भर देता है। नए साल को उत्साह तथा सुचारू रूप से चलाने की ऊर्जा भी प्रदान करता हैं। हम यह कह सकते हैं कि यह लोकोत्सव एक ईंधन का ही काम करता है।

निष्कर्ष :

रामदिया का भठेलि उत्सव मात्र उत्सव ही नहीं है, बल्कि यह समन्वय का प्रतीक है। रामदिया में निवास करने वाले हिंदू-मुसलमान दोनों ही धर्मावलंबियों के पूर्ण सहयोग से यह भठेलि उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव में हर धर्म, हर वर्ण के लोग भाग ले सकते हैं। इसमे आमंत्रण की औपचारिकता नहीं होती। इस उत्सव के आकर्षण के दो केंद्र बिंदु हैं। पहला- विभिन्न सत्रों से लाए गए गोसाईं, जिसकी भक्ति तथा आराधना कर भक्त रससिक्त हो जाते हैं तथा दूसरा है-यहाँ आयोजित किया जाने वाला भठेलि मेला, जिसमें लोग अपने मनपसंद की वस्तुओं को खरीद सकते हैं। रामदिया निवासी भी उस पावन, पवित्र, त्योहार के अवसर पर हजार-हजार लोगों के चरणधूल पाकर धन्य महसूस करता है। भठेलि उत्सव के संचालन का पूरा दायित्व रामदिया पुस्तकालय तथा सामूहिक सांस्कृतिक केंद्र वहन करते हैं। ❑

संदर्भ-सहायक ग्रंथ :

1. डेका श्री परमानंद (सं), भठेलि, 2001
2. स्मृति ग्रंथ, विनंदी चंद्र महाविद्यालया, रामदिया, 2018
3. स्मृति ग्रंथ, विनंदी चंद्र महाविद्यालया, रामदिया, 2018
4. शर्मा सत्येंद्रनाथ, असोमीया साहित्यर समीक्षात्मक ईतिवृत, 2006
5. बरा देवजित(स.), उत्तर-पूर्व भारतर जनगोष्ठिय उत्सव-अनुष्ठान, 2015
6. पाठक मुकुट, रामदिया अंचलर लोक संस्कृतिर अध्ययन, 2016
7. डेका परमानंद, भठेलि (रामदियापुथिभराल आरू समूहिक सांस्कृतिक केंद्रर मुखपत्र), 2001
8. गोगोई लोकेश्वर, असमर लोक-संस्कृति, 2011
9. दास दिलीप कुमार, लोक संस्कृतिर संफूरा,
10. काकति बाणीकांत, पुरनी कमरुपुरर धर्मर धारा, 1955
11. काकति बाणीकांत, पुरनी असमीया साहित्य, 1940
12. भट्टाचार्य प्रमोद चंद्र, असमर लोकउत्सव, 1969
13. राजगुरु सर्बेश्वर, मेडीएविल आसामीज सोसाइटी, 1967
14. हरिचन्द्र भराली, विविधा, पुथि प्रकाशन, कामाख्या गेट, गुवाहाटी-781009

आधुनिक हिंदी साहित्य : विविध परिदृश्य

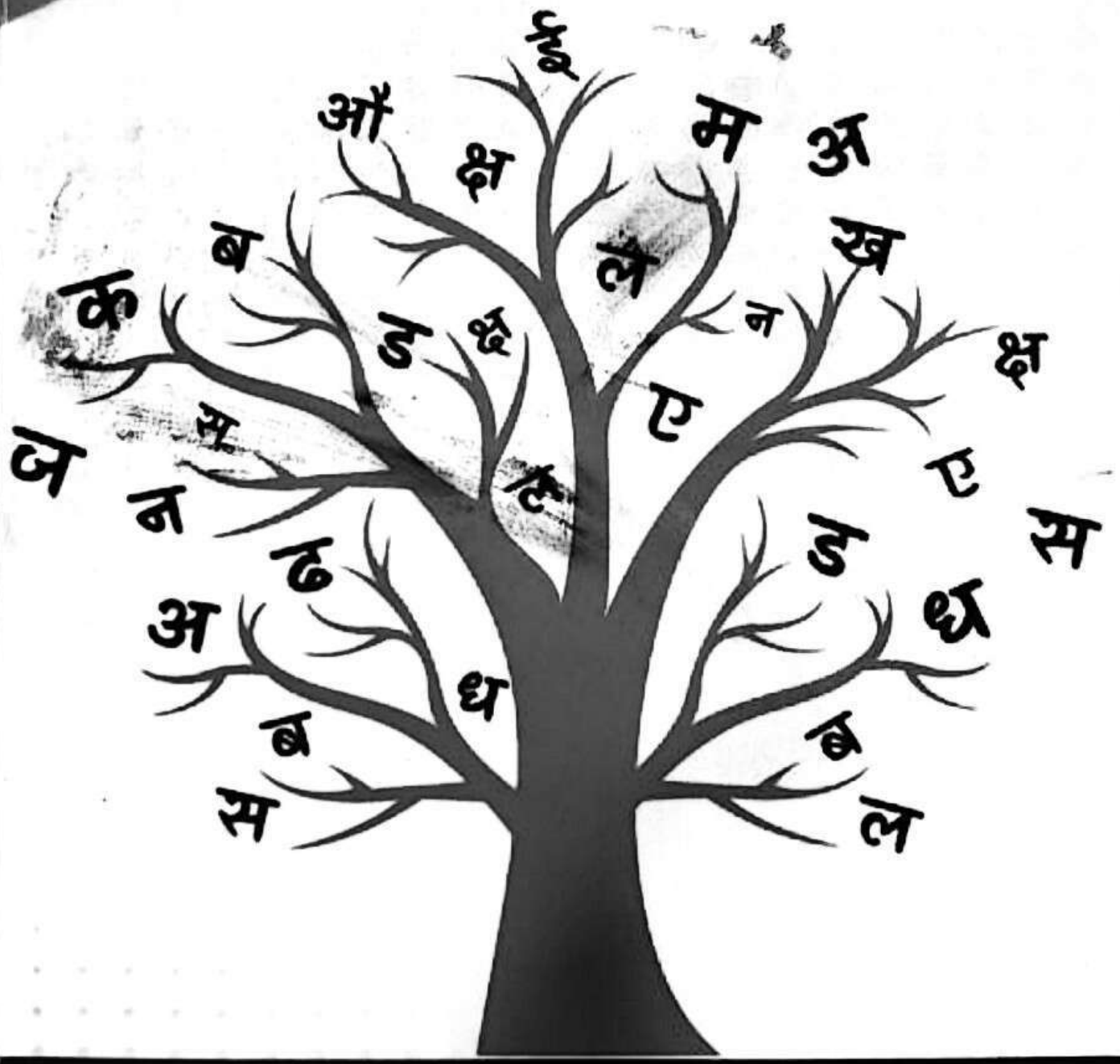

संपादक : डॉ. नजमा बेगम

आधुनिक हिंदी साहित्य : विविध परिदृश्य

संपादक

डॉ. नजमा बेगम

एच.एस.आर.ए. पब्लिकेशन्स बेंगलुरु

आधुनिक हिंदी साहित्य : विविध परिदृश्य

© डॉ. नजमा बेगम

प्रकाशक

एच.एस.आर.ए. पब्लिकेशन्स, बेंगलुरु

नंबर 2, श्री. अन्नपूर्णेश्वरी निलय, पहला मेन रोड,

बसवेश्वर नगर, लगगेरे, बेंगलुरु- 560058

बिक्री मुख्यालय- बेंगलुरु

ISBN : 978-93-5506-766-1

प्रथम संस्करण : 2024

मूल्य : रु 390 /-

संपादक की सहमति से पुस्तक के प्रकाशन के समय इस बात का भरसक प्रयास किया गया है कि प्रकाशित सामग्री पूरी तरह से त्रुटि-रहित हो। इस पुस्तक में प्रकाशित आलेखों में लेखकों के अपने विचार हैं। संपादक एवं प्रकाशक किसी भी विषय वस्तु के लिए जिम्मेदार नहीं है। समीक्षा लेख एवं रिव्यू आर्टिकल में प्रयुक्त वाक्यांशों के अतिरिक्त लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक का कोई अंश किसी माध्यम में प्रयोग करना या पुनरुत्पादित करना प्रतिबंधित है।

अनुक्रमणिका

1. समकालीन कविता में सामाजिक, राजनीतिक परिदृश्य 01
   - डॉ. बिंदु कनौजिया
2. हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति 07
   - डॉ. निशा वालिया
3. समकालीन कथा साहित्य में तृतीय लिंगी समाज 12
   - डॉ. ओम प्रकाश सैनी (डी. लिट्)
4. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय भावना 16
   - आशीष कुमार
5. यशपाल के उपन्यासों में राजनीतिक परिदृश्य 22
   - डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
6. कवि बृजेश सिंह की ग़ज़लों में सामाजिक-चेतना 28
   - डॉ. रवींद्र पुंजाराम ठाकरे
7. चंद्रकांता के 'अंतिम साक्ष्य' उपन्यास में स्त्री विमर्श 36
   - अनुराधा दिलीप माळी
8. जगदीश चंद्र माथुर के नाटक और एकांकी में ऐतिहासिक परिदृश्य 41
   - हरिमोहन गुप्ता
9. साहित्य में आदिवासी समाज : अस्तित्व एवं संस्कृति की पहचान 47
   - उदय चिमा बेंढारी
10. हिंदी कहानी साहित्य में बाल मनोविज्ञान : विविध आयाम 53
    - डॉ. बन्सीलाल हेमलाल गाडीलोहार
11. आधुनिक साहित्य में धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य 59
    - गायत्री पटेल
12. नरेश मेहता के साहित्य में सामाजिक परिदृश्य का चित्रण 64
    - डॉ. पार्वती कच्छप
13. भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में संवेदना 70
    - नवल कुमार पाठक

14. दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में सामाजिक, राजनीतिक व्यंग्य 75
- साधना कुमारी
15. अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक, ऐतिहासिक परिदृश्य 81
- डॉ. अवधेश कुमार मेहता
16. विष्णु प्रभाकर के नाटकों में सामाजिक परिदृश्य 86
- पूजा गुप्ता
17. आ. रामचंद्र शुक्ल के मनोवैज्ञानिक निबंधों का विश्लेषण 92
- डॉ. झुनुबाला खुण्टिआ
18. राष्ट्रप्रेम और अटल बिहारी वाजपेई की कविता 97
- गुरुदास प्रजापति
19. लता अग्रवाल की लघुकथाओं में सामाजिक परिदृश्य का चित्रण 103
- मिर्झा आरेफ बेग जहांगीर बेग
20. उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में सामाजिक परिदृश्य का चित्रण 107
- गुड्डी परवीन निसार अहमद खान
21. अज्ञेय की काव्य-यात्रा और सामाजिक, सांस्कृतिक परिदृश्य 113
- डॉ. बिहारी लाल द्विवेदी
22. बाल साहित्य : एक चिंतन 118
- अनिता तोमर
23. आदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यास : 'सांप और सीढी' 123
- प्रा. डॉ. विष्णु गोविंदराव राठोड
24. स्त्री अस्तित्व की खोज : 'अन्या से अनन्या' 128
- बाबू वेळीप
25. मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में प्रेम-विवाह की समस्या 133
- डॉ. कंचन कुडचीकर
26. हरिशंकर परसाई के काव्य में सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य 139
...पा पी.
...न्यास में समाज के मध्यवर्ग का परिप्रेक्ष्य 143
... बिन्दु टी. आर.

28. स्त्री मुक्ति की छटपटाहट : शृंखला की कड़ियाँ 150
- डॉ. देविदास भिमराव जाधव
29. 'काला सागर' कहानी संग्रह में चित्रित मानवीय संवेदना एवं समाज 156
- पूर्णिमा सिंह
30. 'अंधायुग' नाटक में आधुनिक बोध का चित्रण 161
- डॉ. प्रिया ए.
31. 'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का चित्रण 166
- प्रार्थना गोगोई
32. संजीव के उपन्यास : आदिवासी लोक-जीवन में भारतीय संस्कृति 171
- डॉ. मंजू कुमारी
33. महादेवी वर्मा के काव्य में अभिव्यक्त क्रांतिकारी स्त्री 177
- रंजना महेंद्र चौबे
34. 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास में देश-विभाजन से पीड़ित समाज 183
- प्रिया साहू
35. हरिवंश राय बच्चन के काव्य में सामाजिक एवं मानवीय चेतना 188
- जगबीर सिंह
36. नागार्जुन की काव्य दृष्टि : एक अध्ययन 194
- कसीरा जहाँ

36. नागार्जुन की काव्य दृष्टि : एक अध्ययन

- कसीरा जहाँ

छायावादोत्तर काल में विशिष्ट स्थान रखने वाले कवियों में नागार्जुन भी एक है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी नागार्जुन एक कवि, उपन्यासकार एवं आलोचक के रूप में हिंदी साहित्य को समृद्धशाली किया है। नागार्जुन ने काव्य को अपने ढंग से प्रभावित किया। उनकी काव्यभूमि विषम तथा विपुल है। धरती के कवि नागार्जुन एक विद्रोही कवि के रूप में जाने जाते है। जहाँ भी उन्हें दिखावा तथा ढोंग दिखता वे अपना चाबुक चला देते। इस दृष्टि से वे संत कबीर की पंक्ति में जा खड़े होते है। इसी गुण के कारण वे आधुनिक कबीर भी कहे जाते है। गृहस्थ होते हुए भी यायावरी, विद्रोही तथा फक्कड़ स्वभाव कबीर की भाँति नागार्जुन में भी था, इसी कारणवश उन्हें आधुनिक कबीर भी कहा जाता है। अतः उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक विषमताओं का विद्रोह कर एक स्वस्थ तथा प्रगतिशील समाज के गठन का प्रयास किया है।

स्वाधीन भारत के प्रतिनिधि कवि नागार्जुन की काव्य कृतियों को तीन निम्नलिखित वर्गो के अंतर्गत रखा जा सकता है। पहली श्रेणी के अंतर्गत उन संवेदनात्मक तथा कलात्मक कविताओं को रखा गया है, जिसमें उन्होंने मानव मन की रागात्मक और सौंदर्यात्मक छवियों को अंकित किया है, साथ ही साथ मनुष्य की मानवीय संभावनाओं के प्रति आस्था भी व्यक्त की है। दूसरी श्रेणी की कविताओं में व्यंग्य प्रधान कविताओं को रखा गया है, जिनमें सामाजिक कुरूपता, राजनीतिक अवस्था और धार्मिक अंधविश्वास पर व्यंग्य किया है। तीसरी श्रेणी के अंतर्गत उद्बोधनात्मक कविताओं को रखा गया है। हिंदी साहित्य में वे एक क्रांतिकारी कवि के रूप में जाने जाते है। संत कबीर की भांति ही कवि नागार्जुन भी विद्रोही तथा क्रांतिकारी थे। अपने समाज में जो भी देखते उसे बिना झिझक के बोलने की हिम्मत भी रखते। उनकी रचनाओं में राजनीतिक तथा सामाजिक परिवेश का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है। अपने युगीन समाज का ताज़ा गंध उनकी कविताओं में दिखाई पड़ता है। यही कारण है, कि न केवल अपने जन्मस्थान बिहार बल्कि अपना देश तथा विश्व स्तर पर घटित होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं पर नागार्जुन ने अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की है। नागार्जुन ने एक पत्रकार की भाँति ही तथ्य के साथ अपने समय की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक छबि को कविताओं में चित्रित किया है। डॉ सुमन जैन कहती है, कि "कभी-कभी लगता है कि नागार्जुन कवि नहीं पत्रकार है।"[1]

कवि नागार्जुन जनता के कवि है। अपना परिचय देते हुए वे स्वयं कहते है- "तरल आवेगों वाला, अतिभावुक, हृदयधर्मी, जनकवि।"[2] जन जीवन के साथ उनका गहरा लगाव भी था और जुड़ाव भी। वे हमेशा जनजीवन के साथ खड़े रहे। सही अर्थो में वे एक सच्चे जनवादी कवि थे। मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण आम जन को अपने काव्य की परिधि के अंतर्गत रखा। यहीं कारण है, कि जनता में जब भी उन्होंने उपेक्षा, शोषण तथा पीड़ा को देखा उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से उनके लिए आवाज भी उठाई। नागार्जुन के काव्य में जनता के दुःख-दर्द, आशा-निराशा तथा उनकी संवेदनाओं को वाणी ही नहीं दी बल्कि उन्हें उठाने, जगाने और अपने अधिकारों के प्रति सचेत करने का प्रयास भी किया है। इनका काव्य मेहनतकश वर्ग का पक्षधर है। इसका एक और कारण यह भी था कि वे स्वयं भी अभाव के भोक्ता थे। वे एक गरीब मध्यम वर्गीय परिवार में जन्मे। उन्होंने सर्वहारा वर्ग की पीड़ा को देखा ही नहीं बल्कि उसे भोगा तथा अनुभव भी किया। शोमकान्त मिश्र नागार्जुन के विषय में कहते है "इस देश की धरती और जनता की सार्वजनिक मुक्ति के प्रत्येक अभियान में उससे बेहतर जीवन के लिए छेड़े गए हर संग्राम में देश, धरती और जनता का बहुआयामी सामाजिक यथार्थ, जो नागार्जुन की कविता में इतने पारदर्शी रूप में सामने आया है कि उनकी कविता सामाजिक यथार्थ की जीती-जागती प्रतिमा बन गयी है।"[3] वे देश के संघर्षरत जुझारू जन के कवि है। कवि नागार्जुन ने अपनी 'प्रतिबद्ध हूँ' शीर्षक कविता में सामान्य जन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है-

"प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ-
बहुजन समाज कि अनुपल प्रगति के निमित-
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया-धसान' के खिलाफ
अंध-बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए"[4]

इन पंक्तियों के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है, कि सर्वहारा वर्ग की मुक्ति तथा शोषणविहीन समाज का सपना देखा था और अपने इस सपने के सच होने के प्रति आश्वस्त भी थे। उन्होंने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है-

"यों ही गुजारेंगे हमेशा नहीं दिन
बेबसी में, खीझ में, घुटन में, ऊबों में
आयेंगी वापस जरूर हरियालीयां
घिसी-पिटी झुलसी हुई दूबों में।"[5]

व्यंग्य शायद ही किसी कवि ने किया है। उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है, कि उनमें डर तनिक भी नहीं था। वे कभी किसी के भी सामने झुके नहीं; चाहे सामने वाला व्यक्ति कितना ही बड़ा क्यों न हो। अतः उन्होंने हर उस व्यवस्था पर व्यंग्य किया जो समाज के लिए सही नहीं था। नागार्जुन की नजर समाज और शासन से संबंधित हर कोने पर पड़ी। उनके व्यंग्य का क्षेत्र विस्तृत था। नागार्जुन की कृतियों में राजनीति, गैर राजनीति, भ्रष्टाचार, मंत्रियों की बेईमानी, घूसख़ोरी, मठाधीशों की ऐय्याशी आदि कुछ भी नहीं बचा जिसकी उन्होंने धज्जियाँ न उड़ाई। उन्होंने सर्वप्रथम अपने व्यंग्य का केंद्र पूंजीपति सभ्यता और संस्कृति को बनाया। उसके बाद उन्होंने राजनीति तथा शासन की कुव्यवस्था पर व्यंग्य किया। नागार्जुन न ही किसी वाद से जुड़े थे और न ही किसी दल से। इसी कारणवश वह शासन की हर जनविरोधी नीतियों की कड़ी आलोचना अपनी कविताओं के माध्यम से करते थे। वे अपनी तात्कालिक राजनीतिक कविताओं के लिए चर्चित रहे है। वे अपनी 'शासन की बंदूक' शीर्षक कविता में तत्कालीन शासन व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करते हुए कहते है-

"खड़ी हो गई चाँपकर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट-सी शासन की बंदूक
उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे है थूक
जिसमें कानी हो गई शासन की बंदूक"[6]

काव्य की इन पंक्तियों के द्वारा उन्होंने शासन की तानाशाही व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। नागार्जुन के काव्य में लोकतान्त्रिक यथार्थ के अनेक पहलुओं का चित्रण है। पूंजीवादी की निरन्तर वृद्धि, राजनीति और वैभवशाली शक्तियों का गठजोड़, निरक्षर जनता शासक वर्ग की दूरी, शोषण के नए-नए ढंग ये सारे कवि नागार्जुन के चिंतन के विषय थे, जो उनकी कविताओं के माध्यम से व्यक्त हुए है। 'कल्पना के पुत्र हे भगवान' शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा है-

"सामने फैला पड़ा शतरंज-सा संसार
स्वप्न में भी मैं न इसको समझता निस्सार
इसी में भाव, इसी में निर्वाण
इसी में तन-मन इसी में प्राण"[7]

कवि नागार्जुन की कविताएँ मनुष्य की सच्ची पहचान की कविता कही जा सकती है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है, कि वे अपनी कविताओं के जरिए केवल

विजयी या सफलता पाने वाले लोगों को ही महत्व नहीं देते बल्कि उन लोगों को भी महत्व देते है, जो प्रयत्न के बावजूद भी सफलता को प्राप्त नहीं कर पाते। 'उनको प्रणाम' शीर्षक कविता में कवि नागार्जुन कहते है-

"जो नहीं हो सके पूर्ण-काम
मैं उनको करता हूँ प्रणाम।
जिनकी सेवाएँ अतुलनीय
पर विज्ञापन से रहे दूर प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके
कर दिये मनोरथ चूर-चूर!
उनको प्रणाम!"[8]

नागार्जुन की कविताओं में युवा पीढ़ी के प्रति भी असीम प्रेम तथा आत्मीयता दिखाई पड़ती है। उन्होंने आओ मैं तुम्हें अपना चुंबन दूँगा, चंदू, मैंने सपना देखा, पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने, सिके हुए दो भुट्टे आदि कविताएँ युवाओं पर लिखी हैं।

कवि नागार्जुन के काव्य संसार का बड़ा हिस्सा प्रकृति से जुड़ा हुआ है। प्रकृति की गोद में पलकर बड़े होने वाले कवि नागार्जुन के लिए प्रकृति बालसहचरी रही है। प्रकृति के जिस रूप को उन्होंने खुली आँखों से देखा है, उसके मनोरम चित्रों को अपनी कविताओं के माध्यम से चित्रित किया है। 'सिन्दूर तिलकित भाल' शीर्षक कविता में उन्होंने अपने जन्म-स्थान गाँव 'तरौनी' के प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण किया है। अपनी कविताओं में कहीं उन्होंने अस्ताचलगामी सूर्य के अतुलनीय सौंदर्य का वर्णन किया है, तो कहीं गंगा नदी के बाढ़ का दृश्य आँका है। उनकी संवेदना का विस्तार पशुओं तथा पक्षियों तक भी जाता है। जहाँ उन्होंने 'पैनी दाँतोंवाली' शीर्षक कविता में एक मादा सूअर को अपने काव्य की विषयवस्तु बनाया है, वहीं 'कटहल' शीर्षक कविता में पके कटहल का विलक्षण वर्णन किया है। इतना ही नहीं उन्होंने भैस, कोयल, तोता, नीलकंठ इत्यादि विषयों को लेकर उन्होंने कविताएं लिखी है। गीले पाँक की दुनिया गई है छोड़, मुर्गे ने दी बाँग, ऋतु-संधि, बाघ आया उस रात, बहुत दिनों के बाद, नीम की दो टहनियों, फिसल रही चाँदनी, फुहारोंवाली बारिश, जान भर रहे हैं जंगल में आदि नागार्जुन की महत्वपूर्ण प्रकृति विषयक कविताएं है। वे प्रकृति के साथ अपना एक तादात्म्य अनुभव करते है। कवि नागार्जुन की कविताओं में प्रकृति वर्णन के संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह कहते है- "अपने प्राकृतिक परिवेश के प्रति नागार्जुन की यह कच्ची और अ-संस्कृत प्रतिक्रिया अनायास ही ऋक् की आदिम ऋचाओं और 'आदिकाव्य' की वन्य अभिव्यक्तियों की याद ताजा कर देती है। हिंदी में नागार्जुन से पहले और पीछे भी ग्राम प्रकृति के प्रति उत्सव और उल्लास का यह स्वर सुनने को नहीं मिलता।"[9] कवि

10 / 11

नागार्जुन ने प्रकृति के प्रत्येक रूप को अपनी कविताओं में अंकित किया है। उनकी कविताओं में देश के प्रति असीम प्रेम दिखाई पड़ता है। उनके अनुसार क्षेत्रीयता या प्रांतीयता राष्ट्र प्रेम में बाधक है, क्योंकि वह संकीर्णता को जन्म देती है। उनके अनुसार राष्ट्र के प्रति प्रेम का निर्वाह यशोगान से नहीं होता बल्कि कठोर परिश्रम से इस धारा को सुंदर बनाने से है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि सर्वहारा वर्ग के मसीहा कवि नागार्जुन एक संवेदनशील, भावुक, निर्भीक तथा साहसी व्यक्ति थे। कविता उनके लिए विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। उनकी कविताएँ सचमुच सार्थक संवाद की संवाहिका है। उनकी कविताएँ जहाँ सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करती है, वहीं एक स्वस्थ समाज के नवनिर्माण की आशा भी देती है। उनकी कविताएँ जीवन का साक्षात्कार कराती है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ. सुमन जैन, छायावादोत्तर हिंदी कविता के रचनात्मक सरोकार, जय जगत सेवा संस्थान, वाराणसी, सं. 2002, पृ.78
2. डॉ. त्रिभुवन सिंह, साहित्यिक निबंध, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पृ.126
3. डॉ. सुमन जैन, छायावादोत्तर हिंदी कविता के रचनात्मक सरोकार, जय जगत सेवा संस्थान, वाराणसी, सं. 2002, पृ.79
4. नामवर सिंह, नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली सं. 2002, पृ.15
5. बिना शर्मा, निराला और समकालीन हिंदी कविता, ज्ञान भारती, दिल्ली, सं.1996, पृ.137
6. नामवर सिंह, नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली सं. 2002, पृ.104
7. वही, पृ.21
8. वही, पृ.60-61
9. डॉ.त्रिभुवन सिंह, साहित्यिक निबंध, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ.132

कसीरा जहाँ

सहायक प्राध्यापक

आर. जी. बरुवा महाविद्यालय गुवहाटी, असम

ईमेल- rubijahan81@gmail.com

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

जनवादी कवि : कबीरदास

[1]कसीरा जहाँ
[1]सहायक प्राध्यापक, आर0 जी0 बरुवा0 महाविद्यालय, गुवाहाटी, असम

Received: 17 Dec 2023, Accepted: 15 January 2024, Published online: 01 February 2024

Abstract

ज्ञानमार्गी शाखा के मूर्धन्य कवि कबीरदास महान व्यक्तित्व के अधिकारी थे। वह अपने समय के महान क्रांतिकारी, संत, दार्शनिक, समाजसुधारक, भक्त, कवि प्रगतिशील चिंताधारा वाले तथा आडंबरों और रुढियों के भंजक थे। निर्भीक तथा निडर प्रवृति वाले कबीर अपने तत्कालीन परिवेश के प्रति सदेय सजग रहकर जो भी विषमता देखा उसका कड़ा विरोध भी किया। उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदना मुखरित होती हैं। उनकी रचनाओं के जरिए जनसमान्य के दुख–दर्द, वेदना को वाणी मिला हैं। सच्चे अर्थों में कबीर एक जनवादी कवि हैं। वे समान्य जन के पक्षधर थे। प्रस्तुत शोध पत्र में कबीरदास के जनवादी कवि रूप पर प्रकाश डाला जाएगा।

बीज शब्द– कबीर, ज्ञानमार्गी, समाज सुधारक, कवि, जनवादी।

Introduction

'जनवाद' शब्द के मूल में 'जन' शब्द हैं। हिन्दी साहित्य कोश में जनवाद को परिभाषित करते हुए कहा गया हैं– "यह कला, साहित्य और जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण हैं, जो जनसमान्य को महत्व देता है।"1

वास्तव में 'जनवाद' शब्द मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। जनवादी शब्द जनवाद से ही बना हैं। जनवादी कवि यानी वह कवि जिसका जुड़ाव जनता से हो, जो सामाजिक ज़िम्मेदारी से जुड़ा हो। प्रमाणिक हिन्दी कोश में जनवादी का अर्थ– "वह जो जनवाद के सिद्धान्त से प्रभावित हो।"2 जनवादी कवि की विशेषताएँ बताते हुए प्रो. अरविंद दाजी घुडे कहते हैं–"उसका जन से जुड़ाव। जनवादी कवि सीधे सामाजिक जिम्मेदारी से जुड़ता हैं। इसलिए उसकी कविता एक ऐसी साहसी रचनावृति हैं, जो हर युग में अपने चुनौती भरे अस्तित्व की विशिष्टता से पहचाना जाता हैं।"3

कबीरदास भक्तिकालीन निर्गुणशाखा के ज्ञानमार्गी काव्यधारा के मूर्धन्य तथा लोकप्रिय कवि थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी कबीरदास के कवि, समाजसुधारक, भक्त, दार्शनिक रूप भी परिलक्षित होते हैं। कबीर को संत कहा गया हैं। साधारणतः उन साधुओं को जो गृहस्थ जीवन त्याग कर साधना मार्ग को अपना ले उन्हें ही संत कहा जाता हैं। परंतु कबीरदास संत होते हुए भी गृहस्थ जीवन से जुड़े थे। उनका गृहस्थ जीवन एक निर्मल दर्पण की तरह था। वे ऐसे संतों नहीं थे जो सामान्य जनों से अपने को अलग समझे। वे हमेशा सामान्य जन के साथ थे। वास्तविक अर्थों में संत कबीर जनवादी कवि थे। उनका काव्य समाज और सामान्य जन से जुड़ा हैं। सामान्य मानव उनके काव्य का केंद्र–बिन्दु हैं। निर्भीक तथा स्पष्टवादी कबीरदास ने सामाजिक कर्तव्यों से विमुख होकर योग धारण को अनुचित बताया हैं। उन्होंने जोगियों पर व्यंग्य करते हुए कहा है–

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

"कनवा फराय जोगी जटवा, बदौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा।
जंगलजाइ जोगी धुनिया रमौले, काम जराय जोगी बन गैले हिजरा।।"4

कबीर ने सामाजिक विकाश में बाधक बनी कारणों के प्रति उदासीन न रहकर शांति, जनतंत्र और जातीय संस्कृति के लिए संघर्ष करते हैं। उनके रचनाओं का लक्ष्य पीड़ित वर्ग को मुक्ति दिलाना था। कबीर जनता के प्रतिनिधि कवि थे। कवि के रूप में कबीर जीवन के बहुत निकट हैं। उनका जनवादी कवि रूप उनके साहित्य में पूरी तरह से प्रस्फुटित होता हैं। उनमें रचनाओं में युग की प्रगतिशील चेतना की झलक मिलती हैं। कबीर दास का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब समाज में जाति–पाँति के बंधन कठोर होते जा रहे थे और कई प्रकार के भेदभाव व्याप्त थे। धार्मिक आधार पर लोगों में छुआ–छूट, मिथ्याचार, पाखंड आदि भावना इस तरह फैली हुई थी, कि समाज पूरी तरह से दो हिस्सों में बाँटा हुआ था। पहला उच्च वर्ग और दूसरा निम्न वर्ग। इस सामाजिक विभाजन के कारण जन सामान्य का जीवन बहुत ही दयनीय और त्रस्त था। समाज में निम्नवर्ग के अंतर्गत आने वाले लोग कई अधिकारों से वंचित थे। उन्हें अस्पृह समझा जाता था तथा उन्हें धार्मिक स्थलों पर जाने की अनुमति भी नहीं थी। कबीर का मानस संतप्त हो उठता जब वे किसी किसान, चमार, नाइ या धोबी आदि को तिरस्कृत देखते। कबीर स्वयं निम्न वर्ग से थे, अतः उन्होंने उन परिस्थितियों को भोगा था। इसकरणवश उन्होंने जनसामान्य के दुख–दर्द और वेदना को अनुभूत किया तथा उन्हें अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया। कबीर के रचनाएं सामंती आचार–विचार और संस्कृति के प्रति समाज के दलित वर्ग का विद्रोह भी कहा जा सकता हैं। उनकी दृष्टि में न कोई बड़ा न कोई छोटा बल्कि सभी मानव समान है। उन्होंने धार्मिक समानता की बात कहीं हैं। उनके अनुसार मानव धर्म सर्वोपरि हैं। कबीर ने कहा हैं–

"तू जो बामन बामनी जाया और राह ह्वै क्यों नहीं आया।"5
उन्होंने मुसलमानों को फटकारते हुए कहा हैं–
"जो तू तुरक तुरकिनी जाया भीतर खतना क्यों न कराया"6

कबीर ने धार्मिक आधार पर भेदभाव करने वाले पुरोहितो तथा मुल्लाओं को खुलेआम फटकारा। जिसके फलस्वरूप धर्म निरपेक्षता, सामाजिक, सामंजस्य, देश की एकता, अखंडता और सामाजिक नव–जागरण का समन्वित आंदोलन को आगे बढ़ाया हैं। कबीर ने प्रगतिशील चिंता धारा को अपनाते हुए इस सामान्य जन का पक्ष लिया हैं। उन्होंने सामाजिक समता स्थापित करने का प्रयत्न किया हैं। कबीर की दृष्टि में इन्सानों के बीच विभाजित रेखा को निर्मित करना अमानवीय तथा निष्ठुरता हैं। उन्होंने समाज की इस ऊंच–नीच, जाति–पाति, हिन्दी–तुर्क, वर्ण–अवर्ण, राजा–रंक आदि भावना का खंडन करते हुए यह तर्क प्रस्तुत हैं, कि जब हमारे लहू का रंग लाल हैं, तो एक ऊंचा और एक नीचा कैसे? इसप्रकार कबीर समाज तथा देश को जोड़ना चाहते थे। उन्होंने कहा हैं–

"हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध?
तुम कैसे वामन पांडे हम कैसे सूद"7

समाज वर्ण व्यवस्था, अपने अपने आराध्य देवों की श्रेष्ठता सिद्ध करने की होड लगी थी। सामान्य जन भी इस दुविधा में थे। अतः कबीर ने सबसे पहले राम और रहीम के इस दुविधा को त्याग कर

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

"कनवा फराय जोगी जटवा, बदौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा।
जंगलजाइ जोगी धुनिया रमौले, काम जराय जोगी बन गैले हिजरा।।"4

कबीर ने सामाजिक विकाश में बाधक बनी कारणों के प्रति उदासीन न रहकर शांति, जनतंत्र और जातीय संस्कृति के लिए संघर्ष करते हैं। उनके रचनाओं का लक्ष्य पीड़ित वर्ग को मुक्ति दिलाना था। कबीर जनता के प्रतिनिधि कवि थे। कवि के रूप में कबीर जीवन के बहुत निकट हैं। उनका जनवादी कवि रूप उनके साहित्य में पूरी तरह से प्रस्फुटित होता हैं। उनमें रचनाओं में युग की प्रगतिशील चेतना की झलक मिलती हैं। कबीर दास का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब समाज में जाति–पाँति के बंधन कठोर होते जा रहे थे और कई प्रकार के भेदभाव व्याप्त थे। धार्मिक आधार पर लोगों में छुआ–छूट, मिथ्याचार, पाखंड आदि भावना इस तरह फैली हुई थी, कि समाज पूरी तरह से दो हिस्सों में बाँटा हुआ था। पहला उच्च वर्ग और दूसरा निम्न वर्ग। इस सामाजिक विभाजन के कारण जन सामान्य का जीवन बहुत ही दयनीय और त्रस्त था। समाज में निम्नवर्ग के अंतर्गत आने वाले लोग कई अधिकारों से वंचित थे। उन्हें अस्पृह समझा जाता था तथा उन्हें धार्मिक स्थलों पर जाने की अनुमति भी नहीं थी। कबीर का मानस संतप्त हो उठता जब वे किसी किसान, चमार, नाइ या धोबी आदि को तिरस्कृत देखते। कबीर स्वयं निम्न वर्ग से थे, अतः उन्होंने उन परिस्थितियों को भोगा था। इसकरणवश उन्होंने जनसामान्य के दुख–दर्द और वेदना को अनुभूत किया तथा उन्हें अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया। कबीर के रचनाएं सामंती आचार–विचार और संस्कृति के प्रति समाज के दलित वर्ग का विद्रोह भी कहा जा सकता हैं। उनकी दृष्टि में न कोई बड़ा न कोई छोटा बल्कि सभी मानव समान है। उन्होंने धार्मिक समानता की बात कहीं हैं। उनके अनुसार मानव धर्म सर्वोपरि हैं। कबीर ने कहा हैं–

"तू जो बामन बामनी जाया और राह हवै क्यों नहीं आया।"5
उन्होंने मुसलमानों को फटकारते हुए कहा हैं–
"जो तू तुरक तुरकिनी जाया भीतर खतना क्यों न कराया"6

कबीर ने धार्मिक आधार पर भेदभाव करने वाले पुरोहितो तथा मुल्लाओं को खुलेआम फटकारा। जिसके फलस्वरूप धर्म निरपेक्षता, सामाजिक, सामंजस्य, देश की एकता, अखंडता और सामाजिक नव–जागरण का समन्वित आंदोलन को आगे बढ़ाया हैं। कबीर ने प्रगतिशील चिंता धारा को अपनाते हुए इस सामान्य जन का पक्ष लिया हैं। उन्होंने सामाजिक समता स्थापित करने का प्रयत्न किय हैं। कबीर की दृष्टि में इन्सानों के बीच विभाजित रेखा को निर्मित करना अमानवीय तथा निष्ठुरता हैं। उन्होंने समाज की इस ऊंच–नीच, जाति–पाति, हिन्दी–तुर्क, वर्ण–अवर्ण, राजा–रंक आदि भावना का खंडन करते हुए यह तर्क प्रस्तुत हैं, कि जब हमारे लहू का रंग लाल हैं, तो एक ऊंचा और एक नीचा कैसे? इसप्रकार कबीर समाज तथा देश को जोड़ना चाहते थे। उन्होंने कहा हैं–

"हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध?
तुम कैसे वामन पांडे हम कैसे सूद"7

समाज वर्ण व्यवस्था, अपने अपने आराध्य देवों की श्रेष्ठता सिद्ध करने की होड लगी थी। सामान्य जन भी इस दुविधा में थे। अतः कबीर ने सबसे पहले राम और रहीम के इस दुविधा को त्याग कर

3 / 5

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

आपस में भेदभावों के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने दोनों को एक ही माना हैं। कबीर न ही हिन्दू थे और न ही मुसलमान थे। कबीर निर्गुण निराकार ईश्वर के उपासक थे, परंतु वह मुसलमानों के ईश्वर नहीं थे। यहीं कबीर ने अपनी रचनाओं में राम शब्द का उल्लेख कई बार किया हैं, परंतु उनके राम दशरथ पुत्र राम भी नहीं हैं। कबीर के ईश्वर तो निर्गुण निराकार होते हुए भी हर जगह मौजूद हैं। उन्हें पाने के लिए हज या तीर्थ जाने की आवश्यकता नहीं हैं। इसप्रकार कबीर ने शोषित–सर्वहारा वर्ग के लिए परमात्मा का वह द्वार खोल दिया जो सदियों से शोषक सवर्णों ने बंद कर रखा था। कबीर ने कहा हैं –

"करता के कुछ रूप न देखा। करता के कुछ वरन न बेखा।
ताके जाति गोट कछु नाहीं। महिमा बरनि न जाय मो पाहीं।
रूप अरूप नहीं तेही टाऊँ। बर्न सबर्न तेहि ठाऊँ।
कहौं कबीर बिचारि कै, जाके बर्न न गाँव।
निराकार और निर्गुना है पूरित सब ठांव।"8

उन्होंने भक्ति मार्ग का द्वार हर व्यक्ति के लिए खोल दिया हैं। कबीर का जीवन दर्शन उनके वातावरण से पूर्णतया प्रभावित था। उन्होंने भक्ति और प्रेम को अपने विचार–दर्शन का आधार बनाया। उन्होंने प्रत्येक जन में प्रेम के महत्व को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने प्रेम को जीवन का मूलमंत्र माना हैं। उन्होंने प्रेम को भक्ति तथा जीवन दोनों के लिए आवश्यक माना हैं। यह प्रेम सारे बाह्याचारों के पहुँच से बहुत ऊपर हैं। यह सारे संस्कारों के प्रतिपाद्य से भी श्रेष्ठ हैं। इसपर उन्होंने कहा हैं–

"पढ़ि पढ़ि के पत्थर भया, लिखी लिखी भया जु ईंट।
कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एकौ छींट।।
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढै सो पंडित होई।"9

ठस प्रकार कबीर ने प्रेम के महत्व का प्रतिपादन कर सभी मनुष्यों के बीच प्रेम का संचार करना चाहा हैं। कबीर ने अपनी वर्गगत सीमाओं का उल्लंघन कर सामान्य जन का साथ दिया। उनकी रचनाओं के मूल में बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के सिद्धांत पर आधारित था। कबीर के साहित्य में सामान्य मानव के समूहिक भावों की ही अभिव्यक्ति होती हैं।

कबीरदास एक जनवादी कवि होने के नाते उन्होंने भाषा और शैली को भी जनवादी बनाने के समर्थक थे। यहीं कारण हैं कि उनकी भाषा में अनेक बोलियों के शब्दों का समिश्रण पाया जाता हैं। उन्होंने चमत्कारिक और ऊहात्मक या क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया हैं। उन्होंने भाषा को सरल बनाना चाहा हैं। यहीं कारण हैं कि उन्होंने लोक भाषा के शब्दों क प्रयोग अधिकतर किया हैं। उन्होंने अलंकरण और कलावाजी के स्थान पर अनुभूति पर अधिक ज़ोर दिया हैं। कबीर की भाषा पर टिप्पणी करते हुए डॉ सरनाम सिंह शर्मा कहते हैं– "कबीर का लक्ष्य अपने मत को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचा देने का था, साहित्य सर्जना नहीं जिसने कि वे किसी विशेष साहित्यिक भाषा का प्रयोग करते। वे प्रचलित कुरीतियों और रूढ़ियों के विरोधी थे। उनमें वे समाज को मुक्त करना चाहते थे, वे दम्भ, पाखंड और छदम के स्थान पर सहज सत्य की प्रतिष्ठा देखना चाहते थे।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

ये चाहते थे कि सत्य कि एकता का साक्षात्कार इन चर्म लोचनों से नहीं हो सकता, केवल हृदय के लोचन ही उसे देख सकते हैं। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कबीर किसी क्षेत्रीय संकीर्णता में उलझकर अपने को खो देना नहीं चाहते थे। इससे उन्होंने उस भाषा को अपनाया जो विस्तृत भूखंड की भाषा थी, जिसको हिन्दी और मुसलमान दोनों सहर्ष समझ और स्वीकार कर सकते थे और जिसका स्वागत अनेक प्रदेशों में हो सकता था।"10

निष्कर्षतः– यह कहा जा सकता हैं, कि कबीर की काव्य में उनका जनवादी रूप पूरी तरह से झलकता हैं। कविताएँ उनके लिए एक साधन मात्र हैं, जिसके द्वारा वे उस सत्य को वाणी दे रहे थे, जिसका साक्षात्कार उन्होंने स्वयं किया था। उनकी कविताएं उनकी निजी अनुभूतियों के निचोड़ के साथ ही जन समान्य के जीवन क दस्तावेज़ हैं। कबीर जनता के बीच रहकर उन्हीं की भाषा में बात करते रहे, तथा युग की समस्याओं से जूझते रहे। वे परम सत्य के अन्वेषी थे। कबीर सामाजिक परिष्करण के नित नए प्रयोग करते थे।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची–

1. वर्मा डॉ धीरेंद्र (स), हिन्दी साहित्य कोश, परिभाषिक शब्दावली, भाग–1, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी,1985, पृष्ठ संख्या –257
2. वर्मा, आचार्य रामचन्द्र तथा अन्य(स), प्रमाणिक हिन्दी कोश, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1, 2001, पृष्ठ संख्या– 286
3. घुडे, प्रा. अरविंद दाजी, जनवादी कविता में अभिव्यक्त सामाजीक जीवन सत्य, आयुषी इंटरनेशनल इंटरडीसीप्लीनरी रिसर्च जर्नल, 2019, पृष्ठ संख्या–84
4. प्रेमी, डॉ गंगा सहाय(स), कबीर– एक विशेष अध्ययन, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 2005, पृष्ठ संख्या–174
5. शर्मा शिवकुमार, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृतियाँ, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली–6, 1989, पृष्ठ संख्या–125
6. प्रेमी, डॉ गंगा सहाय(स), कबीर– एक विशेष अध्ययन, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 2005, पृष्ठ संख्या–135
7. प्रेमी, डॉ गंगा सहाय(स), कबीर– एक विशेष अध्ययन, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 2005, पृष्ठ संख्या–135
8. प्रेमी, डॉ गंगा सहाय(स), कबीर– एक विशेष अध्ययन, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 2005, पृष्ठ संख्या–174
9. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली–110002, पृष्ठ संख्या–145
10. शर्मा, डॉ सरनाम सिंह, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, कल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या–718

BODHAK

Multidisciplinary Perspectives

A Multilingual Book of Research

Edited by

Dr. Pranjit Kumar Nath
Dr. Malabika Sarma
Dr. Joyanta Deka
Dr. Ashifuddin Ahmed Saikia

BODHAK

Multidisciplinary Perspectives
(A Multilingual Book of Research)

Edited by
DR. PRANJIT KUMAR NATH
DR. MALABIKA SARMA
DR. JOYANTA DEKA
DR. ASHIFUDDIN AHMED SAIKIA

GLOBAL
PUBLISHING
HOUSE INDIA

Bhubaneshwar,Guwahati,Hyderabad,N-Delhi,Visakhapatnam

Editorial Board

Editors
Dr. Pranjit Kumar Nath, Dr. Malabika Sarma, Dr. Joyanta Deka and Dr. Ashifuddin Ahmed Saikia

Members
Dr. Utpal Kalita
Dr. Karabi Kakati
Archana Borah

Copyright © 2024, R.G.Baruah College, Guwahati, Assam, India

Offices
Bhubaneshwar, Guwahati, Hyderabad, New Delhi, Visakhapatnam

All rights reserved. No part of this book or parts thereof may be reproduced stored in a retrieval system or transmitted in any language or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise without the prior written permission of the copyright owners and the publishers.

The responsibility for the facts stated, opinion expressed, conclusions reached etc. is entirely that of the author. The editors and the publisher accept no responsibility for them.

ISBN: 978-93-95606-87-5

An Initiative of Research and Publication Cell, R.G.Baruah College, Guwahati, Assam, India

Published by Global Publishing House India
90, Saheed Nagar, Bhubaneswar-7,Odisha
H. No.4, Bye lane-7, New Sarania, Gandhi Basti, Guwahati-3, Assam
No. 13-1-1,Vigneshwara Enclave,Anthony Nagar, Maharanipeta, Visakhapatnam-2,AP

Contents

- অতি সাম্প্রতিক অসমীয়া কবিতাত নগৰ অভিব্যক্তি
  — ড° জয়ন্ত ডেকা 11
- বাণীকান্ত কাকতিৰ সমালোচনা সাহিত্য
  — জ্যোতিশিখা বড়ো 21
- পরিবর্তিত মূল্যবোধের পরিপ্রেক্ষিতে বাংলা উপন্যাসের নারী ঃ একটি সংক্ষিপ্ত পর্যালোচনা
  — তপতী দত্ত 27
- **Multidimensional Poverty and Chars: A Study in Dhubri district of Assam**
  — Debasmita Deka, Dr. Anjan Bhuyan 41
- **A Study on Tourism Industry to make India an Atmanirbhar Bharat**
  — Dipankar Basak 60
- **Financial Literacy: An Essential Tool for Financial Inclusion of Self-Employed Women in Small Businesses**
  — Dr. Esha Chetri 77
- **Navigating the Wave: Understanding the Global Population Explosion**
  — Gitangshu Deva Sarma 89
- **Co-creating a New Service: Insights and Implications**
  — Jinty Dutta, Dr. Chandan Goswami 105
- **Determinants of Capital Requirements of Micro Enterprises: A Study in Badarpur Town, Assam**
  — Jubyir Ahmed 117
- **Bell Metal Industry in Assam: Problems and prospects for rural development**
  — Lipi Bhuyan, Dr. Kasturi Saikia 127

- **Work-life Balance: A Review**
  — Neha Tiwari
- **Promotion of Green Banking in Indian Banks** 142
  — Dr. Prerana Sarma
- **Microfinance and Self-Help Groups in East Khasi Hills, Meghalaya: A Study on Financial Inclusion and Empowerment** 157
  — Reveka Khan, Dr. Shahnaz Ali
- **From Online Orders to Doorstep Delivery: The Evolution of Last Mile Delivery in India** 174
  — Shashank Hazarika
- **Green Purchase Behaviour - A Study in the Kamrup Metro District of Assam** 191
  — Sumi Begum, Jisan Ali Ahmed
- **Enchanted Forests and the Role of Cybernetics in Bringing Forth This Dimension in *Snow White and the Huntsman*** 207
  — Tania Tarannam
- **मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे अधूरे' नाटक में आधुनिकतावाद** 227
  — डॉ करबी तालुकदार
- **महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों के सामाजिक चेतना** 235
  — कसीरा जहाँ
- **असमीया गीत-कविता में स्वाधीनता आंदोलन का प्रभाव** 243
  — डॉ मालबिका शर्मा
- **प्रेमचंद के साहित्य में नारी संघर्ष और चुनौतियाँ** 251
  — संगिता सिंह रॉय
- **मृदुला गर्ग की कहानियों में आर्थिक विषमता- एक विश्लेषण** 261
  — सुनिता स्वर्गीयारी
- **Contributor List** 274

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों के सामाजिक चेतना

कसीरा जहाँ

शोध सारांश

साहित्य और समाज का अंतःसंबंध है। साहित्य मानव के जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आकर्षक-विकर्षण के ताने बाने से बना है। यह मानव की आवश्यकताओं का अध्ययन और उनकी पूर्ति का सांस्कृतिक साधन है, साथ ही यह सामाजिक प्रभाव उत्पन्न करने का अस्त्र है। सामाजिक चेतना के किसी स्तर को घनीभूत करने के लिए भी साहित्य का माध्यम जरूरी है।

हिन्दी की अन्य विधाओं की भाँति ही रेखाचित्र एक महत्वपूर्ण विधा है। यह कहानी तथा निबन्ध के मध्य की एक शब्दचित्रमयी अभिनव गद्य-विधा है। यह एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जो अन्य साहित्यिक विधा से भिन्न होते हुए भी उनकी कुछ गुणों से सराबोर है। इसमें कहानी की भाँति जीवन की कोई एक झलक रहती है, नाटक या एकांकी की भाँति इसमें चरित्र की अन्तःस्थितियों का उदघाटन होता है तथा निबंध की तरह इसमें लेखक का व्यक्तित्व अभिव्यंजित होता है।

आधुनिक मीरा के नाम से जानी जाने वाली महादेवी वर्मा एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न रचनाकार है। छायावाद के चार प्रमुख स्तंम्भों में से एक है। उन्होंने कहानियाँ, निबंधों तथा रेखाचित्रों के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

बीज शब्द- साहित्य, समाज, महादेवी वर्मा, रेखाचित्र, चेतना आदि।

भूमिका

रहस्यवादी कवि महादेवी वर्मा का हिन्दी साहित्य में प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्य-काल में हुआ था। महादेवी वर्मा का कवि रूप जितना प्रबल है, उनका लेखक रूप उतना ही प्रभावशाली है। उन्होंने गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। एक रेखाचित्रकार, निबंधकार आदि विधाओं में महादेवी

वर्मा की महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके साहित्य में मानव जीवन तथा समाज जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण पाया जाता है। रेखाचित्र लेखन के क्षेत्र में महादेवी वर्मा की विशेष भूमिका रही है। हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ रेखाचित्रकारों में महादेवी वर्मा अन्यतम है। उनके रेखाचित्रों में समाज के प्रति जागरूक दृष्टिकोण उनके रेखाचित्रों में प्रतिबिम्बित होती है। रेखाचित्र हिन्दी साहित्य की आधुनिकतम गद्य विधाओं में से एक है। इसका मूल स्रोत अंग्रेजी शब्द 'स्केच' से माना जाता है। 'थम्ब-नेल स्कैच' को लघुतम रेखाचित्र का आधुनिकतम नमूना है, जिसमें चार-छः पंक्तियों में ही चित्र प्रस्तुत किया जाता है। रेखाओं से जीवन के विविध रूपों को आकार देने की प्रक्रिया या शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले शब्द-चित्र ही रेखाचित्र है। रेखाचित्र एक स्वतंत्र कला है। रेखाचित्र मात्र किसी व्यक्ति का ही नहीं बल्कि किसी स्थान, वातावरण और भावात्मक व्यक्तित्व का भी खींचा जा सकता है। जिस प्रकार एक कैमरामैन अपने कैमरे में किसी वस्तु या व्यक्ति की यथार्थ चित्र खींचता है, जिसमें उसकी कैमरे के लेन्स के साथ ही उसके 'एंगील देने' और 'पोज' लेने की पैनी दृष्टि भी बड़ा काम करती है। ठीक उसी प्रकार रेखाचित्र में लेखक की पैनी दृष्टि वस्तु या व्यक्ति में स्थित अनेक प्रभावों और प्रतिक्रियाओं के दर्शन करके मात्र शरीर का ढांचा ही नहीं खींचता, बल्कि उसके मन, आत्मा और जीवन की विशेषताओं का भी नक्शा अपनी रेखाओं में प्रस्तुत करता है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकतम विधा 'रेखाचित्र' का जन्म छायावाद से ही माना जाता है। सन 1936-1937 ई. से इसके विकाश को गति मिलती है। इस युग की रेखाचित्रों के कथ्य इसके विकाश में श्रीशर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा महादेवी वर्मा आदि लेखको की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। रेखाचित्रों की सूची में श्रीराम शर्मा कृत 'बोलती प्रतिभा' जिसका प्रकाशन सन 1937 ई. में हुआ विषेशरूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने रेखाचित्र लेखन के क्षेत्र में पथ प्रदर्शक का कार्य किया है। कुछ विद्वानों ने उन्हें हिन्दी का प्रथम रेखाचित्रकार माना है। छायावाद युगीन बनारसी दास तथा महादेवी वर्मा ने भी अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के माध्यम से रेखाचित्र विधा को समृद्ध किया है। महादेवी वर्मा तथा बनारसी दास चतुर्वेदी ने देशभक्तों, समाजसेवियों, साहित्यकारों तथा संतों पर लिखे अपने रेखाचित्रों को विशाल भारत तथा अन्य समकालीन पत्रिकाओं में प्रकाशित किया।

विश्लेषण

महादेवी वर्मा द्वारा लिखित चार रेखाचित्रों है, जो इसप्रकार है-

1. अतीत के चलचित्र

'अतीत के चलचित्र' महादेवी की प्रथम रेखाचित्र संग्रह है। इसका प्रकाशन सन 1941 ई. में हुआ। इस संग्रह में ग्यारह रेखाचित्रों को रखा गया है। इन रेखाचित्रों में रामा, भाभी, बिन्दा, सबिया, बिट्टो, बालिका माँ, घीसा, अभागी स्त्री, अलोपी, बदलू और लक्षमा है।

2. स्मृति की रेखाएँ

यह महादेवी की दूसरी रेखाचित्र संग्रह है। इस संग्रह का प्रकाशन सन 1945 ई. में हुआ। इसमें उनकी सात रेखाचित्रों को रखा गया है। इन रेखाचित्रों में भक्तिन, चीनी फेरीवाला, जंग बहादुर, मुन्नू की माई, ठकुरी बाबा, बिबिया और गुंगिया शामिल है।

3. मेरा परिवार

इस संग्रह का प्रकाशन सन सन 1972 ई. में हुआ। इस संग्रह में उन्होंने अपने घर तथा आस-पास मिले पशु-पक्षियों से जुड़े स्मृति को शब्दबद्ध किया है। पशु-पक्षियों इस संग्रह में कुल 7 रेखाचित्रों को रखा गया है, जिनमें नीलकंठ मोर, गिल्लू, सोना हिरनी, दुर्मुख खरगोश, गौरा गाय, निलू कुत्ता, निक्की, रोजी और रानी रेखाचित्र है।

4. पथ के साथी

यह रेखाचित्र संग्रह साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जिसका प्रकाशन सन 1974 ई. में हुआ। इस संग्रह में लेखिका ने अपने साहित्यिक जीवन से संबन्धित साहित्यकारों का चित्रण किया है। प्रस्तुत संग्रह में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सियारामशरण गुप्त को रेखांकित किया है।

उपरोक्त रचनाओं में रखचित्रों के साथ उनका जीवन स्मरण भी पाया जाता है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि इनका सम्बन्ध कहीं न कहीं लेखक के ही जीवन से जुड़ा होता है। महादेवी वर्मा ने इनमें किसी ऐतिहासिक महापुरुष का चित्र नहीं खींचा है। बल्कि इनमें लेखिका ने उन्हीं पात्रों का चित्रण किया है, जिन्होंने उनके हृदय को छुआ है। लेखिका के मानवीय संवेदना, प्रेम तथा सामाजिक चेतना इनमें प्रस्फुटित हुआ है। उनके रेखाचित्रों में भारतीय जन-जीवन के वे

कुरूप चिन्हों का चित्रण है, जिनमें कुछ अशिक्षा और शोषण से दीन और सरल बन गए है तो कुछ कथाकार की ममता और करुणापूर्ण सहानुभूति से। महादेवी वर्मा ने अपने विराट सहानुभूति के सहारे उनलोगों को अपने रेखाचित्रों में स्थान दिया है, जो समाज में उपेक्षित है। जीवन के सत्य और वास्तविक रूप को उन्होंने अपने रेखाचित्रों में वर्णित पात्रों के जरिए अभिव्यक्त किया है। उनके रेखाचित्रों के सम्बन्ध में रामदेव शुक्ल कहते है-

"उनके रेखाचित्रों में आया हुआ चित्र-विधान हिन्दी गद्य को गद्य की काव्यात्मकता और जातीय स्मृति के अनुकूल फार्म के अनुरूप अभिव्यक्ति क्षमता- दोनों प्रदान करने में सफल हुआ है।" (श्रीवास्तव, 2003, 7)

महादेवी वर्मा की इन रेखाचित्रों में समाज के प्रति उनका एक जागरूक दृष्टिकोण भी दिखाई पड़ता है। इन रेखाचित्रों में समाज जीवन के समस्याओं का चित्रण मिलता है। उन्होंने रेखाचित्रों में ठोस सामाजिक आधार भूमि से संपृक्त होकर गोचर एवं मूर्त चित्र प्रस्तुत किया है।

महादेवी वर्मा ने एक यथार्थवादी समाजद्रष्टा कथाकार है। उन्होंने सामाजिक विषमताओं का चित्रण किया है। उन्होंने देहाती क्षेत्र तथा वहाँ के उत्पीड़न जन का वर्णन किया है। उन्होंने भू-स्वामी वर्ग तथा गरिब तथा भूमिहीन किसान के प्रति शोषण तथा अन्याय की भर्त्सना किया है। उनके संघर्ष को शब्दबद्ध किया है। उनके रेखाचित्रों के पात्र- घीसा, लछमा, सबिया, अलोपी, रधिया, बदलू, जंगबहादुर, धनसिंह आदि चरित्र आज भी उत्पीड़ित तथा संघर्षरत है। ये पात्र जीवन के प्रवाह में दुख के थपेड़ों की झेलते हुए किसी प्रकार लेखिका की संवेदना की परिधि में आ गए है। घीसा नामक चरित्र के माध्यम से पूरे ग्रामीण समाज का अंतविरोध का मिलता है। 'घीसा' शीर्षक रेखाचित्र में जिन्दा रहने के लिए जीवन संग्राम करते अनेक स्त्री-पुरुषों के चित्र मिलते है। घीसा की विधवा माँ अपने ही समाज की निष्ठुर अफवाहों के बीच दूसरों के घर लीप-पोतकर अपना और घीसा का पेट पालती है। देहातों में कुपोषण तथा शिक्षा की सुव्यवस्था न होने के कारण असंख्य बालकों का जीवन नष्ट किस तरह चिंतनीय है। गंगा पार के गाँव झूंसी तथा उसके आस-पास के गाँव के बच्चे अशिक्षा तथा दरिद्रता का जीवन जी रहे थे। लेखिका ने उन बच्चों को बिना भवन के पीपल के पेड़ के नीचे पढ़ाने का निश्चय किया। बच्चे भी बड़े ही जिज्ञासु थे। कुपोषण के शिकार इतने थे, कि किसी प्रकार ही मनुष्य संतान की परिभाषा में आते थे। इसका उल्लेख करती हुई

लेखिका कहती है-

"और वे जिज्ञासु कैसे थे सो कैसे बताऊँ! कुछ कानों में बालियाँ और हाथों में कड़े पहने, धुले कुरते और ऊँची धोती में नगर और ग्राम का सम्मिश्रण जान पड़ते थे, कुछ अपने बड़े भाई का पाँव तक लम्बा कुरता पहने खेत में डराने के लिए खड़े किये हुए नकली आदमी का स्मरण दिलाते थे, कुछ उभरी पसलियों, बड़े पेट और टेढ़ी दुर्बल टाँगों के कारण अनुमान से ही मनुष्य-संतान की परिभाषा में आ सकते थे और कुछ अपने दुर्बल, रूखे और मलिन मुखों की करुणसौम्यता और निष्प्रभ पीली आँखों में संसार भर की उपेक्षा बटोर बैठे थे," (वर्मा, 2017, 57)

लेखिका ने समाज के नग्न रूप को उद्भासित किया है, जहां देश के भविष्य ही शिक्षा व्यवस्था से कोसो दूर पर है। जो समाज की अन्य धारा की तुलना में उपेक्षित है। महादेवी वर्मा के 'भक्तिन' रेखाचित्र में स्त्री के सामाजिक स्थिति का वर्णन पाया जाता है। लिंग भेद पर आधारित समाज जीवन में स्त्री का सामाजिक तथा पारिवारिक उपेक्षित जीवन का चित्रण किया है। भक्तिन को उसके गेहुएँ गेहरंग तथा तीन बेटियों को जन्म देने के कारण समाज में उपेक्षा सहना पड़ा। उसकी सास तीन बेटों को जना था अतः वह मचिया पर बैठकर शासन चलाती थी। उसकी जेठानियों को भी वहीं सम्मान प्राप्त था, क्योंकि उन्होंने भी बेटों को जन्म दिया था। अतः वे हर प्रकार के सुख सुविधाओं की हकदार थी। वहीं भक्तिन तथा उसकी बेटियों को घर का सारा काम करना पड़ता था। महादेवी वर्मा ने इसका उल्लेख करते हुए कहा है-

"जिठानियाँ बैठकर लोक-चर्चा करतीं और उनके कुलटे लड़के धूल उड़ाते, वह मट्ठा फेरती, कूटती, पिसती, राँधती और उसकी नन्ही लड़कियाँ गोबर उठातीं, कंडे पाथतीं। जिठानियाँ अपने भात पर सफ़ेद राब रखकर गाढ़ा दूध डालतीं और अपने लड़कों को औटते हुए दूध पर से मलाई उतारकर खिलतीं। वह काले गुड़ की डली के साथ कठौती में मट्ठा पाती और उसकी लड़कियाँ चने-बाजरे की घुघरी चबातीं।" (वर्मा,2000,3)

उपरोक्त रेखाचित्र में लेखिका ने भक्तिन के जरिए समाज में स्त्री अस्मिता की संघर्षपूर्ण आवाज को प्रस्तुत किया है। साथ ही लेखिका ने विधवाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत किया है। पति के न होने पर स्त्री को कमजोर माना जाता है। अतः समाज तथा परिवार वाले विधवाओं पर अपना आधिपत्य ही समझ लेते है। भक्तिन के विधवा होने पर उसके जेठ तथा जेठानी उसका विवाह किसी दूसरे से करने के लिए उसके पीछे हाथ धोकर पड़ जाते है। यहाँ तक की

भक्तिन की बड़ी बेटी के विधवा होने पर उसका विवाह भी छलपूर्वक एक ऐसे तितरबाज से कर देते है, जो दिनभर आवारागर्दी करता है।

वहीं लेखिका ने 'भाभी' रेखाचित्र में विधवाओं के प्रति शोषण तथा अन्याय को दर्शाया है। भारतीय समाज में एक विदूर दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी विवाह कर सकता है, वहीं एक विधवा स्त्री के लिए कई सवाल उठते है। पति के न होने पर सुख-सम्मान के सारे द्वार भी बन्ध हो जाते है। यहाँ तक परिवार की सम्पति पर कोई अधिकार नहीं होता। विधवा होने के कारण घर का सारा काम भी उसी के हिस्से आता है। इस रेखाचित्र के जरिए हिन्दू समाज में विधवाओं के प्रति शोषण की कहानी मुखर हुई है। महादेवी वर्मा ने विधवाओं की विवशता को आलोच्य रेखाचित्र में करते हुए कहा है-

"उस समाधि जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद के मानों निरन्तर वृद्ध होने की साधना में लीन थी।" (वर्मा, 2017, 27)

वहीं महादेवी वर्मा ने 'बिट्टो' नामक रेखाचित्र में बिट्टों के अभागे जीवन का स्मरण का बाल विवाह तथा अनमेल विवाह जैसे कुप्रथा पर कुठाराघाट किया है। बिट्टो की शादी बचपन में ही हो गयी थी। उसे वैधव्य भी अबोधपन में ही प्राप्त हुआ। पैतीस वर्ष का लम्बा समय पार किया। लेखिका ने विधवा विवाह की प्रथा को दिखाया है, परन्तु उसका उद्देश्य स्त्रियों का उद्धार करना है। जिसपर लेखिका ने व्यंग्य करते हुए कहा है-

"जिस समाज में 64 वर्ष का व्यक्ति 14 वर्ष की पत्नी चाहता है, वहाँ 32 वर्ष की बिट्टो के पुनर्विवाह की समस्या सुलझा लेना टेढ़ी खीर थी। उसके भाग्य से ही 150 वर्ष की पूर्णायु वाला कोई पुरुष न मिला और उसके जन्म-जन्मांतर के अखण्ड पुण्य-फल से हमारे 54 वर्ष के बाबा ने उसके उद्धार का बिडा उठाया।" (वर्मा, 2017, 47)

महादेवी वर्मा ने 'अभागी स्त्री' में एक वेश्या की बेटी के प्रति साभाजिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। समाज के रूढ मान्यताओं के कारण वह निरपराध होते हुए भी, योग्य और सुशील होते हुए भी समाज से बहिष्कृत है। लोग उसे पतिता, कुलटा, दुष्चरिता कहकर उसे अलग कर देते है। आलोपी रेखाचित्र में लेखिका ने दरिद्र वर्ग के प्रति समाज की भावनाओं के उच्च वर्गीय समाज के कृत्रिम जीवन तथा दिखावटीपन का खुलासा किया है। इसमें उन्होंने ऐसे युवा वर्ग का चित्रण किया है, जो आराम की जिन्दगी जीने का ही स्वप्न देखते है। नेत्रहीन

आलोपीदीन की मातृ तथा पितृ भक्ति भावना के कारण वह महादेवी वर्मा के हृदय में विशेष स्थान बना पाया। लेखिका उसकी तुलना उन असंख्य युवकों से करती है, जो अपने सुख साधन के लिए अपने माता-पिता से झगड़ते है। लेखिका लिखती है-

"जीवन से अन्जान किशोरों की संख्या कम नहीं, जो सुख के साधनों के लिए उस माँ से झगड़ते हैं, जिसकी उँगलियों के पोर सिलाई करते-करते चलनी हो चुके हैं। कुलबधुओं के समान आँसू पीने वाले युवकों का अभाव नहीं, जिनका पौरुष न दरिद्र पिता का सब कुछ छीन लेने में कुंठित होता है, और भिक्षावृति से मूर्छित।" (वर्मा, 2017, 73)

महादेवी वर्मा ने सामाजिक तथा मानवीय सम्बन्धों में आ रही विकृतियों व विसंगतियों का चित्रण किया है। मानव में बढ़ती संवेदनहीनता को 'गोरा' नामक रेखाचित्र में वर्णित किया है। गोरा उनके घर की एक गाय है, जिसका उज्जवल रंग, छोटे-छोटे सींग, लम्बी सुडौल गर्दन, पुष्ट लचीले पैर, भरे पुट्ठे, चिकनी भरी पीठ थी। लेखिका को वह इटैलियन मार्बल में तराशी हुई मालूम पड़ती थी। वह बहुत ही प्रियदर्शन थी। गोरा के आने से पहले लेखिका एक ग्वाले से दूध लेती थी। लेकिन गोरा इतना दूध देने लगी की 'दुधों नहाओ' का आशीर्वाद फलित होने लगा तो ग्वाले से दूध लेना लेखिका ने बन्ध कर दिया। लेकिन समस्या आयी तो दूध-दोहन की। तब पुराने ग्वाले ने गोरा के दूध दोहन की सम्मति जताई। लेकिन वास्तविकता यह थी कि उसने दोहन के बहाने अपना प्रतिशोध ले लिया। उसने स्वार्थवश गुड़ की डली के साथ सुई खिला दी। जिसके फलस्वरूप लम्बी यातना सहने के बाद एक दिन गोरा ने ब्रम्ह मुहूर्त में अपना मुख अपनी स्वामिनी के कंधे पर रखकर अपने प्राण त्याग दिये। भारतीय समाज में गौ की पुजा की जाती है, उसी समाज में अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए पशु हत्या जैसे निंदनीय कर्म भी होते है। उन्होंने व्यंग्य करते हुए कहा है-

"गौरंगिनी को ले जाते समय मानो करुणा का समुद्र उमड़, परन्तु लालमणि इसे भी खेल समझ उछलता-कूदता रहा। यदि दीर्घ-निःश्वास का शब्दों में अनुवाद हो सके, तो उसकी प्रतिध्वनि कहेगी 'आह मेरा गोपालक देश।" (मोदी,1995,14)

लक्षमा' नामक रेखाचित्र में लेखिका ने वर्ग-विभाजित समाज में निज संपति के विस्तार के लिए सम्बन्धियों में बढ़ती शत्रुता को दिखने का प्रयत्न किया है। इसमें लेखिका ने किसान-परिवारों की मानसिकता को सूक्ष्मता के साथ वर्णित

किया है। किसानों की दयनीयता इस रेखाचित्र में उभरकर आयी है।

निष्कर्ष

अंत में यह कहा जा सकता है, सचेत साहित्यकार होने के नाते महादेवी वर्मा समाज जीवन से असंपृक्त नहीं है। अपने परिवेश में उन्होंने जो भी सामाजिक विसंगति परिलक्षित की उसे शब्दों के रेखाओं द्वारा अंकित किया। महादेवी का गद्य साहित्य यथार्थ की ठोस धरती पर आधारित है। लेखिका ने सामाजिक अव्यवस्थाओं के प्रति क्षोभ और आक्रोश व्यक्त किया है। समाज के मूलभूत अन्तःविरोधों का चित्रण अपने रेखाचित्रों में करते हुए उत्पीड़ितों के प्रति अपनी सहानुभूति को व्यक्त किया है। उनके रेखाचित्रों मानव हृदय की अतल गहराइयों का सूक्ष्म चित्रण पाया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. तिवारी डॉ. रामचन्द्र, हिन्दी निबंध और निबंधकार, प्रथम संस्करण 2007, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. वर्मा महादेवी, स्मृति की रेखाएँ, प्रथम संस्करण, 2000, भारती-भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पृ.3
3. वर्मा महादेवी, अतीत के चलचित्र, चतुर्थ संस्करण, 2017, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 47
4. मोदी उर्मिला (सं), संस्मरण और रेखाचित्र, संस्करण 2013, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, पृ.14
5. मदान इन्द्नाथ, महादेवी, पहला संस्करण 1973, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
6. यादव चौथीराम, हिन्दी के श्रेष्ठ रेखाचित्र, चतुर्थ संस्करण 2010, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
7. रामप्रकाश डॉ., समीक्षा सिद्धान्त, छठा संस्करण 1987, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली
8. मदान इन्द्नाथ, महादेवी, पहला संस्करण 1973, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
9. श्रीवास्तव परमानन्द, महादेवी, तृतीय संस्करण 2003, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के नवीन दिशा-निर्देश के अनुरूप

ISSN 2321-4945
PEER REVIEWED
& REFEREED JOURNAL

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 74 अंक : 12

मार्च, 2025

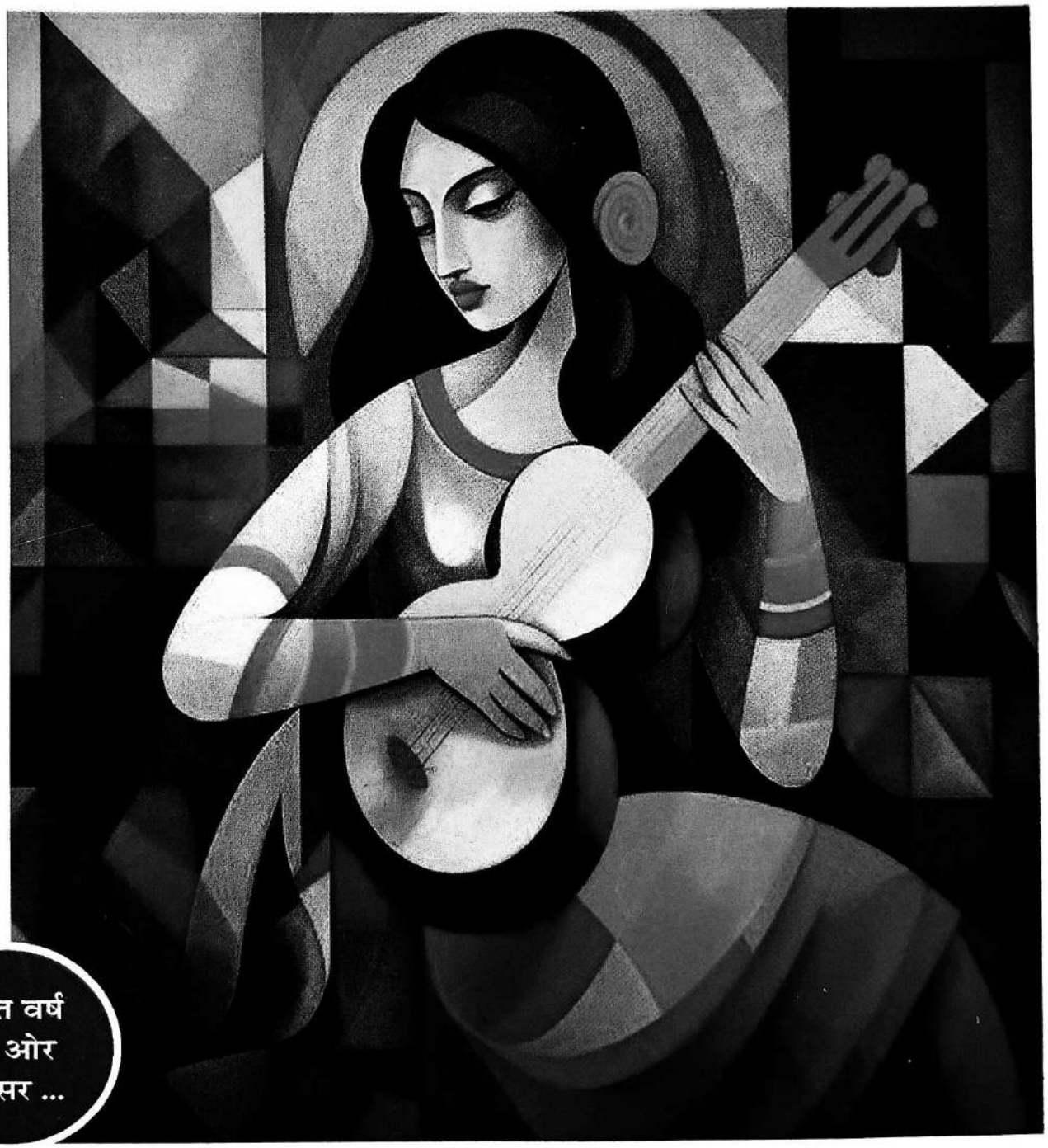

अमृत वर्ष
की ओर
अग्रसर ...

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32

फोन : 9101541395, 9101541380

ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा. लिमिटेड, इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

© सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी विभाग		
	संपादकीय		5
1.	भारतीय ज्ञान-परंपरा और भारतबोध	✍ डॉ. अमित कुमार ✍ डॉ. आकांक्षा तिवारी	6
2.	व्याधगीता : कैसे एक 'शूद्र' ने 'ब्राह्मण' को धर्म का पाठ पढ़ाया	✍ डॉ. प्रेरणा मल्होत्रा	13
3.	नदी संस्कृति की कथा-व्यथा : तितास एक नदी का नाम	✍ प्रो. यशवंत सिंह	17
4.	असमीया कविता में राष्ट्रीय चेतना : स्वाधीनता आंदोलन के विशेष संदर्भ में	✍ डॉ. मालबिका शर्मा	24
5.	समकालीन हिंदी कविताओं में युवा महिला सशक्तिकरण : प्रातिनिधिक कविताओं के संदर्भ में	✍ नमिता.के. ✍ डां. प्रभुसेन डी	31
6.	स्त्री-विमर्श का बृहद आख्यान : आवां	✍ डॉ. मजीद शेख	36
7.	लोकनाट्य कुशान पाला : एक अवलोकन	✍ डॉ. चन्दना शर्मा	43
8.	यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' में विभाजन त्रासदी	✍ डॉ. अन्नु ✍ डॉ. बलजीत कौर	47
9.	'अविरल काव्यधारा की सरसता में बहता उपन्यास 'जिंदगीनामा'	✍ पूनम लाकरा ✍ प्रो. आर.पी. गंगवार	50
10.	चंद्रकुँवर बर्त्वाल का काव्य-दर्शन	✍ डॉ. ममता थपलियाल	54
11.	नारी की परिस्थितियाँ, चुनौतियाँ और प्रगति पर एक परिप्रेक्ष्य	✍ नीलाक्षी पावे	62
12.	डॉ. अनामिका के काव्य में आधुनिकता	✍ नीतू यादव	70
13.	वर्तमान संदर्भ में हिंदी भाषा की व्यापकता	✍ सुश्री अन्नू इंदौरा	75
14.	उदय प्रकाश की कहानियों में स्त्री संघर्ष	✍ शिल्पा दत्त	79
15.	भूमंडलीकरण और 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास (स्त्री लेखन के विशेष संदर्भ में)	✍ नेहा साव	83
16.	मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना ('साकेत' महाकाव्य के विशेष संदर्भ में)	✍ चारुलता देवी	88
17.	मराठा स्वतंत्रता आंदोलन के प्रेरक के रूप में छत्रपति संभाजी : एक ऐतिहासिक अध्ययन	✍ सूर्य प्रकाश	93
18.	राजेश जोशी की कविताओं में अभिव्यक्त यथार्थ	✍ मनीषा कुमारी ✍ डॉ. अरविद कुमार यादव	98
19.	मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं की आत्मकथाओं में नारी चेतना	✍ कसीरा जहाँ ✍ डॉ. नूरजहाँ रहमातुल्लाह	104

ISSN 2321-4945
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं की आत्मकथाओं में नारी चेतना



कसीरा जहाँ

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
(सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
राधा गोविंद बरुवा महाविद्यालय
फटाशील आमबाड़ी, गुवाहाटी-25)
9707197734
rubijahan81@gmail.com



डॉ. नूरजहाँ रहमतुल्लाह

शोध निर्देशक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी
9435161974
rupadinory@gmail.com

शोध-सार :

मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं भारतीय साहित्य की मूर्धन्य महिला कथाकारों में से हैं। मन्नू भंडारी ने कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा की रचना कर जहाँ हिंदी साहित्य भंडार को समृद्ध किया है, वहीं निरूपमा बरगोहाईं ने कहानी उपन्यास, जीवनी, आत्मकथा तथा अनूदित साहित्य द्वारा असमीया साहित्य के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दोनों लेखिकाओं ने अपनी-अपनी आत्मकथाओं में अपने जीवन की कथा को शब्दबद्ध किया है। जिसमें नारी जीवन के विविध रूप, संघर्ष आदि प्रमुख है। प्रस्तुत शोध पत्र में दोनों लेखिकाओं की आत्मकथा में व्यंजित नारी चेतना पर प्रकाश डाला जाएगा।

बीज शब्द :

आत्मकथा, नारी, जीवन संघर्ष, चेतना आदि।

प्रस्तावना :

20वीं शताब्दी के अंतिम दशक की बहुचर्चित लेखिका मन्नू भंडारी और निरूपमा बरगोहाईं समसामयिक कथाकार है। दोनों लेखिकाओं का जन्म एक साल के अंतराल में हुआ था। मन्नू भंडारी का जन्म 3 अप्रैल, सन 1931 में भानपुरा के मध्य प्रदेश में हुआ था, वहीं निरूपमा बरगोहाईं का जन्म 17 मार्च, सन 1932 को गुवाहाटी नामक स्थान में हुआ। दोनों लेखिकाओं में साहित्य के प्रति रुचि बचपन से ही थी। जीवन में अनेकों संघर्ष का सामना किया, अनेक उतार-चढ़ाव के पड़ावों को पार किया, लेकिन साहित्य सेवा निरंतर चलता रहा। मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं ने अपनी आत्मकथा में जीवन के अनेक अनकही बातों पर प्रकाश डाला है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' सन 2007 ई. में प्रकाशित हुई तथा निरुपमा बरगोहाईं की आत्मकथा 'बिश्वास आरू संशयर माजेदि' का प्रकाशन सन 1993 ई. में हुई था। दोनों ही लेखिकाओं ने अपने आत्मकथाओं में नारी जीवन की समस्याओं, उसके संघर्ष तथा उसकी चेतना को वाणी दी है।

अध्ययन में व्यवहृत पद्धति :

प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अवतरण एवं ग्रंथ-सूची आधुनिक भाषा संस्था (Modern Language Association) के अनुसार रखे गए हैं।

विश्लेषण एवं निर्वचन :

चेत शब्द में ना प्रत्यय जुड़ने पर चेतना शब्द बनता है, जिसका अर्थ है - बुद्धि या मनोवृति। भाषा शब्दकोश में चेतना शब्द का अर्थ सावधान होना या चौकस होना है। चेतना मानव को जीवित रखने की एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वह अपने अस्मिता को बनाए रखता है। स्वतंत्रता जीवन की पहली शर्त है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व जब स्त्री शिक्षा तथा स्त्री समअधिकार को लेकर कई आवाजें उठीं। स्त्री को भी पुरुषों की भाँति शिक्षा के अधिकार की माँग की गई। स्त्री भी मनुष्य है, उसे भी समाज में समान अधिकार मिलना चाहिए, उन्हें भी समाज में पुरुषों के समान स्थान मिलना चाहिए, उनमें भी क्षमता है, इन विचारों के कारण नारी में मुक्त होने की भावना उत्पन्न होती है और यहीं भावना 'नारी चेतना' के जागृति का कारण बनती है। नारी चेतना अर्थात नारी का अपने अस्तित्व व अपनी सत्ता के लिए सचेत होना। यहीं भावना स्त्री चेतना है।

हिंदी साहित्य में नारी चेतना का इतिहास लम्बा और जटिल है। 20वीं सदी तत्कालीन पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक और साहित्यिक परिस्थितियों में काफी परिवर्तन हुआ। हिंदी साहित्य में नारी चेतना एक मुख्य विषय बनकर उभरा। जीवन के सभी क्षेत्रों में प्राप्त अनुभव स्त्री द्वारा लिखे गए साहित्य के विविध विधाओं में उभरकर आए है। महिला साहित्यकारों ने अपने वैचारिक चिन्तन से प्रेरित होकर अपने समकालीन परिस्थितियों को अपने लेखन में अभिव्यक्त किया है। स्त्री आत्मकथाएँ भी नारी चेतना का द्योतक है। 20वीं शताब्दी के पश्चात कई महिला साहित्यकारों ने अपनी आत्मकथा लिखी, जिसमें उन्होंने अपने जीवन संघर्ष के विविध पहलुओं को चित्रित किया है, जिसके मूल में उनकी चेतना है।

मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं के आत्मकथाओं में नारी चेतना के कई पहलुओं का चित्रण मिलता है। 'एक कहानी यह भी' और 'बिश्वास आरू संशयर माजेदि' में स्वयं के साथ साथ अन्य नारियों का चित्रण किया है। इन आत्मकथाओं में स्त्री संघर्ष का चित्रण के साथ नारी चेतना भी दिखाई देती है। 'एक कहानी यह भी' तथा 'बिश्वास आरू संशयर माजेदि' की मुख्य नारी पात्र स्वयं लेखिका है। मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं ने अपनी आत्मकथा में जीवन के अनुभवों, विशेषकर एक स्त्री के रूप में उनके चेतना को दर्शाया है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' और निरूपमा बरगोहाईं की आत्मकथा 'बिश्वास आरू संशयर माजेदि' में नारी चेतना के निम्नलिखित पहलू दिखाई देते है-

1.सामाजिक रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों के विरुद्ध चेतना :

दोनों आलोच्य आत्मकथाओं में नारी को सामाजिक रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों से संघर्ष करते हुये देखा जाता है। भारतीय समाज व्यवस्था में परंपरा के नाम पर स्त्री के लिए अनेक नियम बनाये गये है। समाज में बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, जाति प्रथा आदि सामाजिक कुप्रथाएँ उस समय मौजूद थी। लड़कियों को कम बोलना, घर की दहलीज के भीतर रहना मर्यादित माना जाता था। मन्नू भंडारी मारवाडी परिवार से थी। मारवाड़ी समाज में लड़कियों के लिए कई कड़े नियम थे। वहाँ लड़कियों के लिए नीची नजर और बंद जबान का ठप्पा लगा था। ऐसी पाबंधियों के बीच रहने के बावजूद भी हर विपरीत परिस्थिति का विरोध किया है। एकबार उनके घर कई साध्वियों का पढ़ाव हुआ था। उन साध्वियों के साथ लेखिका ने धार्मिक आडम्बरों पर काफी बहस किया। एक लड़की का इसतरह बहस करना दु:साहस का काम था। लेखिका अपने कॉलेज के दिनों में हड़तालें करवाती, भाषण देती तथा लड़कों के साथ विभिन्न कार्यवाहियों में भाग लेती है। उनकी इन गतिविधियों का विरोध कई लोगों ने किया। पिता के कुछ दकियानूसी मित्रों ने आकर लेखिका की काफी बुराई भी की। उस समय लड़कों का भाषण, हड़ताल आदि गतिविधियों में हिस्सा लेना एक आम बात थी, परन्तु लड़की के यह आबरू या इज्जत का प्रश्न बना दिया जाता। मन्नू भंडारी के पिता आधुनिक होते हुए भी कहीं न कहीं परम्परावादी सोच से नहीं उभर पाये थे। अत: लखिका का इन गतिविधियों में हिस्सा लेना उन्हें बर्दाश्त नहीं हो रहा था। जिसके कारण लेखिका और उनके पिता में वैचारिक टक्कर होने लगा। इसका उल्लेख करते हुए लेखिका कहती है-

'हाथ उठा-उठाकर नारे लगती, हड़तालें करवाती,

लड़कों के साथ शहर की सड़कें नापती लड़की को अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद बर्दाश्त करना उनके लिए मुश्किल हो रहा था तो किसी की दी हुई आजादी के दायरे में चलना मेरे लिए।'' भंडारी, 2008, 23)

निरूपमा बरगोहाईं ने अपनी आत्मकथा 'बिश्वास आरू संशयर माजेदि' में अपने समय की सामाजिक रूढ़ियों के उल्लेख किया है। उन रूढ़िवादी परम्पराओं जो एक मनुष्य की प्रगतिशीलता में बाधक है, उनके विरुद्ध नारी चेतना को भी अभिव्यक्त किया है। उस समय असमिया समाज में भी लड़कियों को लड़कों की भाँति कहीं भी आने-जाने की स्वतन्त्रता नहीं थी। लेखिका के माता-पिता इस प्रकार के रूढ़िवादी विचारधारा से मुक्त थे, अत: लेखिका को अकेले घूमने-फिरने की पूरी आजादी थी। जिसका उल्लेख करती हुई लेखिका कहती है-

''आमार दिनत गाभरू छोवालीर बंधु थकार प्रश्न नूठिछिल, किंतु आमार घरत मोर स्वाधीनता आछिल मोर भाई-ककाईर दरे, मई स्वाधीन भावे अकले घूरी फूरिछिलो,'' (बरगोहाई, 1995, 19)

(अर्थात हमारे समय जवान लड़कियों के मित्र होने का सवाल ही पैदा नहीं होता था, लेकिन मेरे घर में मेरी स्वाधीनता मेरे भाई-भैया की तरह ही थी, मैं स्वाधीन होकर अकेले ही घूमती-फिरती थी।)

इस प्रकार दोनों ही लेखिका ने सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करते हुए अपने व्यक्तिगत स्वाधीनता के प्रति सचेनता को दर्शाया है। स्त्री-पुरुष दोनों ही सामाजिक इकाई है, लेकिन दोनों के बीच पारिवारिक या सामाजिक व्यवहार में अन्तर देखा जाता है। दोनों ही लेखिकाओं के समकालीन समय में स्त्रियों को काफी पाबंधियों से गुजरना पड़ा था। घर से बाहर आने-जाने की पाबंदी केवल स्त्रियों को ही है, जबकि पुरुषों को इस क्षेत्र में काफी स्वाधीनता मिली है। इन्हीं पाबंधियों के कारण स्त्रियाँ शिक्षा व्यवस्था से कोसों दूर थी। भारतीय परिवार में लड़की के विवाह का निर्णय, वर का चयन घर के पुरुष या घर के मुखिया व्यक्ति द्वारा ही लिया जाता था। एसी स्थिति में मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं ने अपने विवाह का निर्णय स्वयं लेना उनके नारी चेतना को दर्शाता है। उनके अनुसार स्त्री भी समाज की स्वतंत्र सत्ता है, उन्हें भी अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेने का अधिकार है। मन्नू भंडारी के पिता ने तो उनसे रिश्ता ही तोड़ दिया। उन्होंने अंत तक विरोध किया। जबकि निरूपमा बरगोहाईं के माता-पिता ने उनके निर्णय को स्वीकारा था।

लेखिका मन्नू भंडारी ने पत्नी के सुख और संतोष की दावेदारी करनेवाले ऐसे लोग को देखा है, जो अपनी पत्नियों पर प्रहार करते है। वह कहती है, कि कुछ पत्नियाँ शरीर पर प्रहार झेलती है, तो कुछ भावनाओं पर। यहाँ तक की लेखिका के लेखक पति राजेंद्र के विचार भी पुरुषवादी थे। उनके अनुसार पत्नी को नर्स की भाँति होना चाहिए।

2. शिक्षा, स्वावलम्बनता तथा स्वतंत्रता के प्रति चेतना :

मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं ने शिक्षा तथा स्वावलंबन के महत्व पर बल देती है। नारी सशक्तिकरण के लिए शिक्षा तथा स्वावलम्बन को महत्वपूर्ण मानती है। शिक्षा और स्वावलंबन के कारण दोनों लेखिकाओं ने समाज में एक नई पहचान स्थापित की है। अशिक्षित तथा परनिर्भरशीलता नारी जीवन को दुखदायी तथा कष्टकर बना देता है। परनिर्भरशीलता के कारण स्त्री को निर्णय लेने के अधिकार से कोसों दूर रहना पड़ता है। आर्थिक रूप से परतंत्र होने पर हर स्थिति में दूसरे के निर्णय को स्वीकार करना उनकी नियति बन जाती है। मन्नू भंडारी ने अपनी अपनी आत्मकथा में अपनी माता का वर्णन किया है, जो अशिक्षित तथा परनिर्भरशील थी, जिसके कारण पति के हर निर्णय को स्वीकार करना पड़ता। दोनों लेखिकाओं ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया है। हालांकि इस क्षेत्र में वे स्वयं भाग्यशाली थी, क्योंकि उन्हें अपने माता-पिता से शिक्षा के लिए पूर्ण समर्थन मिला था। परिवार से मिले समर्थन के कारण दोनों लेखिकाओं के मन में शिक्षा तथा स्वावलंबनता के प्रति चेतना को आसान बना दिया।

3.स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में समानता के प्रति चेतना :

भारतीय समाज जेंडर आधारित अवधारणा से संचालित होता है। यह अवधारणा बच्चों में तो विभेद पैदा करता ही है, साथ पति-पत्नी, भाई-बहन आदि

के संबंधों को भी प्रभावित करते है। लैंगिक विभेद जन्म से ही शुरू हो जाता है। 'दुधों नहाओं पूतों फलों' जैसी आशीर्वाद में भी लैंगिक अंतर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। लिंगवाद का असर लड़कियों के शिक्षा व्यवस्था पर भी पड़ता है, जिसका उल्लेख मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में किया है। लेखिका ने अपने समय के सामाजिक अव्यवस्था पर अपनी आत्मकथा में प्रकाश डाला है। मन्नू भंडारी के पिता ने शिक्षा के क्षेत्र में लड़के तथा लड़की में कोई भेद नहीं किया, लेकिन लड़कियों को बाहर आने-जाने में रोक थी। साल में एकाध बार ही भाइयों के संग घूमने का मौका मिलता था। लेखिका निरूपमा बरगोहाईं के माता-पिता ने अपने बेटे-बेटियों में कोई शिक्षा या आने जाने को लेकर कोई विभेद नहीं किया। दोनों ही लेखिकाओं के समकालीन परिवेश में लिंगवाद देखा जाता है। गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी दोनों की सहभागिता के बावजूद भी उनके संबंधों में सम्बन्धों में समानता वाला भाव नहीं था। भारतीय संस्कृति में ऐसे कई परम्पराएँ है, जहाँ पति को परमेश्वर का दर्जा देकर उन्हें पुजा जाता है। गाँव या देहात के सामान्य-साधारण लोगों की बात अगर छोड़ भी दी जाए तो स्वयं को आधुनिक कहलाने वाले स्त्री-पुरुष को समान मनाने वाले लोग भी उन व्रत-उपवास के समय परमेश्वर बनकर अपने पैर आगे बड़ा देते हैं। दोनों लेखिकाओं ने पति-पत्नी के इस रूप का विरोध करते हुए सहभागी तथा सहपाथेय माना है। निरूपमा बरगोहाईं का मानना है, कि पुरुषप्रधान समाज में अपने सुविधार्थ पुरुषों ने रीति-नियमों का निर्माण किया है। विवाह के समय वर और वधू की आयु में अन्तर होता है। वर आयु में वधू से बड़ा होता है। विवाह में उम्र का यह अंतर भी पुरुषों ने अपने सुविधा के लिए ही बनाया है। अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख करती हुई कहती है-

''आमार पुरुषप्रधान समाजत दरातकै कइनार वयस कम होवार कारण हेनों पुरुषर सुविधार अर्थे करा विधि-व्यवस्था फलश्रुति। कारण स्वामीये वृद्ध वयसलैके तथा मरणर समयलैके स्त्रीर सेवा-सुश्रुषा पुवार आशा थाके।''

(बरगोहाईं, 1995, 182)

अर्थात् हमारे पुरुषप्रधान समाज में वर से वधू की उम्र कम होने का कारण यह है, पुरुष के सुविधा के लिए किया गया व्यवस्था। कारण स्वामी के वृद्धवस्था या मृत्यु तक स्त्री की सेवा-सत्कार पाने की आश।

लेखिका मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं ने यह स्वीकारा है, कि शारीरिक शक्ति को छोड़कर स्त्री-पुरुष दोनों ही समान सामर्थशाली है।

4. आत्म-जागरूकता के प्रति चेतना :

मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं की आत्मकथा में नारी के आत्म जागरूकता का दर्शन मिलता है। मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा में दो पीढ़ी के नारी का उल्लेख किया है। उन्होंने माँ के रूप में पुरानी पीढ़ी तथा अपने रूप में आधुनिक पीढ़ी की नारी को चित्रित किया है। लेखिका के अनुसार पुरानी पीढ़ी की स्त्री और नई पीढ़ी के स्त्री की सोच में काफी परिवर्तन आ चुका है। लेखिका के अनुसार उनसे पहली वाली पीढ़ी की स्त्रियों में अस्मिता बोध की भावना का अभाव था। वह तो मात्र अपने रिश्तों से ही पहचानी जाती थी। इस रिश्तों से हटकर उनका अपना भी कोई पहचान है, इसका बोध उन्हें नहीं था, लेकिन शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता तथा जागरूकता के कारण उसे अपने स्वतंत्र तथा जीवंत इकाई का बोध हो गया है। अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख करती हुई लेखिका लिखती है-

'हमसे पहले पीढ़ी की स्त्री का न तो कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व होता था.....न ही कोई स्वतंत्र पहचान, वह तो मात्र रिश्तों से ही पहचानी जाती थी। इन रिश्तों से परे भी उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व है... उसका अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व है...उसका अपना कोई नाम (अस्मिता) भी है, इस बात का उसे बोध तक नहीं था....न उसे, न उसके परिवार के लोगों को बल्कि कहूँ कि समाज को। लेकिन समय के साथ-साथ शिक्षा, जागरूकता, आर्थिक स्वतन्त्रता और बाहरी दुनिया से बढ़ते रिश्तों ने उसके भीतर इस बोध को जगाया कि रिश्तों से परे भी उसकी अपनी एक स्वतंत्र सत्ता है ...अपनी अस्मिता है कि वह भी समाज कि एक स्वतंत्र जीवन्त इकाई है।''

(भंडारी, 2008, 118)

दूसरी ओर निरूपमा बरगोहाईं के आत्मकथा 'बिश्वास

आरू संशयर माजेदी' में नारी में आत्मबोध की भावना परिलक्षित होती है। स्वयं लेखिका में बचपन से ही आत्मबोध की चेतना दिखाई देती है।

''जीवनटोत अइन छोवालीर दरे सहज-सरल गतानूगतिक पथत चलि जावलै दिया मोर पक्षे एइबाबेइ कठिन आछिल जे मोर अति मजबूत स्वाधीन मन एटा-मोर जीवनत सकलो सिद्धान्त बहुत कम बयसरे परा मई अकलेइ लै आहिछिलो।''

(बरगोहाईं, 1995, 45)

अर्थात् जीवन में दूसरी लड़कियों की तरह सहज-सरल गतानुगतिक रास्ते पर चलना मेरे लिए एकदम कठिन था, क्योंकि मुझमें एक अत्यन्त मजबूत स्वाधीन मन था-अपने जीवन की सारे फैसले बहुत कम आयु से खुद ही लेती थी।

इससे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक परिवर्तन के साथ नारी में आत्मबोध की भावना आती है। आत्मजागरूकता के कारण वह अपने स्वतंत्र सत्ता से परिचित हुई, जिसके कारण अस्मिता के लिए संघर्ष का सिलसिला शुरू हुआ।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि आलोच्य दोनों आत्मकथाओं में व्यक्त मन्नू भंडारी तथा निरूपमा बरगोहाईं के विचारों से नारी चेतना के विविध पक्ष उभरकर आते हैं। दोनों लेखिकाओं ने नारी चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दोनों लेखिकाओं ने अपनी स्वतन्त्रता और अधिकारों के लिए संघर्ष किया है। अपने अस्तित्व की खोज का समाज में एक अलग पहचान बनायी है। एक कहानी यह भी तथा बिश्वास आरू संशयर माजेदि' में नारी अस्मिता, उसके आत्म-पहचान तथा उसकी स्वतन्त्रता को दर्शाया गया है। ❑

संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. भंडारी, मन्नू एक कहानी यह भी, 2019, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-110051
2. बरगोहाईं, निरूपमा. बिश्वास आरू संशयर मजेदि. प्रथम संस्करण. 2018, श्री अजय कुमार दत्ता, स्टूडेंट्स स्टोर, गुवाहाटी-781001
3. भंडारी, मन्नू एक कहानी यह भी, 2019, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-110051
4. बरगोहाईं, निरूपमा. बिश्वास आरू संशयर मजेदि. प्रथम संस्करण. 2018, श्री अजय कुमार दत्ता, स्टूडेंट्स स्टोर, गुवाहाटी-781001
5. भंडारी, मन्नू एक कहानी यह भी, 2019, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-110051
6. बरगोहाईं, निरूपमा. बिश्वास आरू संशयर मजेदि. प्रथम संस्करण. 2018, श्री अजय कुमार दत्ता, स्टूडेंट्स स्टोर, गुवाहाटी-781001

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी: परंपरागत एवं आधुनिक बोध



डॉ. नुरजहाँ रहमातुल्लाह
डॉ. खंडूजी हानवतराव वाघमारे
डॉ. नीता मणि बरदलै

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी :
परंपरागत एवं आधुनिक बोध

डॉ. नुरजहाँ रहमातुल्लाह
डॉ. खंडूजी हानवतराव वाघमारे
डॉ. नीता मणि बरदलै

Akshita Publishers and Distributors
Delhi-110053 (India)

Published by :

Akshita Publishers and Distributors

J-180/5-A, Ram Pratap Marg, Kartar Nagar, Delhi-110053

E-mail: abooks2019@gmail.com

Mobile: 9968053557

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी : परंपरागत एवं आधुनिक बोध

First Edition: 2025

ISBN: 978-93-91120-37-5

Copyright: Author

All rights reserved. No part of this work may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior written permission of the author.

This Book has been published in good faith that the material provided by author is original. Every effort is made to ensure accuracy of material but the publisher and printer will not be held responsible for any inadvertent errors.

PRINTED IN INDIA

Published by Akshita Publishers and Distributors, Delhi-110053. Laser Type Setting at Shahabuddin Computers, Printed at Milan Enterprises, Delhi-110002.

अध्याय-तेईस

असम में हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अनुवाद की भूमिका

–कसीरा जहाँ[1]

शोध सारांश

भूमिका

अनुवाद समन्वय का सेतु है। यह एक भाषा के साहित्य को दूसरी भाषा के साहित्य के पाठकों तक पहुँचाने का एक दृढ़ साधन होता है। वर्तमान समय में मानव अपने वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकाश हेतु अपने भाषा–साहित्य के अतिरिक्त अन्य भाषा के वाङमय को भी आत्मसात करके समस्त संसार की मानव पंक्ति में स्वयं को, अपने समाज तथा अपने राष्ट्र को अग्रिम पंक्ति में खड़ा देखना चाहता है। जन्म के साथ ही वह अपनी मातृभाषा सीख लेता है, और अपनी स्कूली शिक्षा तथा अपने परिवेश से द्वितीय भाषा यानि मानक भाषा सीख लेता है। हर व्यक्ति के लिए संसार की समस्त भाषाओं को सीखना सम्भव नहीं। परन्तु हर भाषा के वाङमय के जरिए जीवन, संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान–विज्ञान को जानना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है, जब अन्य भाषा की समग्रियों का अनुवाद हो।

---

[1] सहायक प्राध्यापक, राध गोविन्द बरुआ महाविद्यालय

असम में हिन्दी भाषा का आरम्भ और विकाश

भारतवर्ष के उत्तर पूर्वाञ्चल प्रकृति से घिरा असम एक ऐसा राज्य है, जहाँ अनेक भाषा के लोग रहते है। यहाँ के मूल निवासियों के साथ ही कई जन–जातियाँ भी निवास करती है, जिनकी अपनी निजी बोलचाल की भाषा है। अतः यहाँ की भाषाई परिवेश विविधरंगी है। यहाँ की मुख्य भाषा असमीया होने के साथ साथ यहाँ कई उपबोलियाँ बोली जाती है। उदाहरण स्वरूप– बोड़ो, राभा, गारों, तिवा, मिसिंग, कार्बी आदि। यहाँ संपर्क भाषा के रूप असमीया भाषा ही मुख्य भूमिका निभाती है। तथा इन उपबोलियाँ का प्रयोग यहाँ रहने वाले जाति–जनजाति के लोग आपसी लोकाचार के लिए करते है। इसके अतिरिक्त भारत के अन्य प्रान्तों से शिक्षा व्यापार, कृषि या प्रशासनिक कार्य आदि के कारण अनेक लोगों का असम में आगमन स्वतन्त्रता के पहले से ही हुआ। अतः यहाँ हिन्दी, नेपाली, बंग्ला, मराठी आदि आर्यमूलीय भाषाओं का प्रयोग भी होता है।

असम में हिन्दी–प्रचार तथा हिन्दी शिक्षा के प्रवर्तन के इतिहास में भुवन चन्द्र गगै का नाम पहली पांक्तेय में है। भुवन चन्द्र गगै (सन 1889–1940 ई) में स्वप्रेरणा से हिन्दी–प्रचार कार्य आरम्भ किया था। उन्होंने सन 1918 ई. में 'असम पालिटेकनिक इन्स्टिट्यूशन' नामक एक विद्यालय की स्थापना की। सन 1926 ई. से उन्होंने उक्त विद्यालय में हिन्दी को अनिवार्य पाठ्यविषय के रूप में स्थान दिया। इस प्रकार पहली बार असम में विधिवत तरीके से सन 1926 ई. से हिन्दी प्रचार कार्य का अध्यापन के जरिए शुभारम्भ का प्रयास हुआ लेकिन प्राथमिक समस्या हुई योग्य पाठ्य–पुस्तकों एवं अनुभवी शिक्षकों की। सन 1928 ई. में काशी तथा बिहार से शिक्षकों के आ जाने पर यहाँ हिन्दी–शिक्षण में गति आई। परिणामस्वरूप शिवसागर में हिन्दी के प्रचार–प्रसार का ऐसा माहौल बना कि हिन्दी पढ़नेवाले छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। उक्त विद्यालय में हिन्दी की शिक्षा तीसरी से आठवीं कक्षा तक अनिवार्य एवं आगे दसवीं तक ऐच्छिक रूप से दी जाती थी। बाद में यहाँ के हिन्दी पाठ्यक्रम को हिन्दी–प्रचार समिति, वर्धा के अनुरूप कर दिया गया था। वर्धा समिति का परीक्षा का केन्द्र भी पहली बार यहीं स्थापित हुआ था। प्रारम्भ में इसके व्यवस्थापक इन्द्रेश्वर सुतिया थे, बाद में इसका दायित्व भुवन चन्द्र गगै ने संभाला।

दूसरी बार असम में हिन्दी का औपचारिक रूप से प्रवेश सन 1934 ई. में हुआ, जब महात्मा गाँधी *'अखिल भारतीय हरिजन सभा'* की स्थापना करने असम आए थे। उस समय माजुली के सत्राधिकार एवं स्वतन्त्रता सेनानी श्री पीताम्बर देव गोस्वामी के आग्रह पर गाँधी जी बाबा राघव दास जी को हिन्दी के प्रचारक के रूप में असम भेजते है। सन 1936 ई. में गड़मूर के सत्राधिकार पीताम्बर देव गोस्वामी के सभापतित्व में प्रान्तीय हिन्दी–प्रचार समिति का गठन किया गया। डिब्रुगढ़ में शिव सिंहासन मिश्र, शिवसागर में सूर्यवंशी मिश्र, जोरहाट में अम्बिका प्रसाद त्रिपाठी तथा गोवालपाड़ा में पंडित ध्यानदास ने हिन्दी के प्रचार का कार्य आरम्भ किया। सन 1938 ई. के 3 नवंबर को *'असम हिन्दी प्रचार समिति'* की स्थापना गुवाहाटी में हुई। गोपीनाथ बरदलै इस संस्थान के संस्थापक थे। असम में हिन्दी के प्रचार–प्रसार में इस संस्थान की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस संस्थान द्वारा लगाए गए प्रथम शिविर में कमल नारायण देव प्रथम हिन्दी के अध्यापक बनकर आए। सौमित्रम ने इस संबंध में कहा है–

"इसके फलस्वरूप असमीया साहित्य के कर्णधारों तथा सूर्य कुमार भुयाँ, देवकान्त बरुवा, भावानन्द दत्त, चक्रेश्वर भट्टाचार्य, अजित बरुवा, हेम बरुवा, अनेक राजनीतिज्ञ, सामाजिक कार्यकर्ता तथा संस्कृति सेवी कलाकारों कों कमल नारायण ने हिन्दी के माध्यम से समेट लिया और यहाँ हिन्दी का प्रचार–प्रसार दिन दूना–रात चौगुना बढ़ गया"[1]

इस समिति ने प्रबोध, विशारद, प्रवीण आदि कई परीक्षाओं का आयोजन किया जिससे यहाँ के लोग हिन्दी भाषा तथा साहित्य को सीख सके, पढ़ सके। यह संस्थान आज भी कार्यकारी है, वर्तमान में यह असम राष्ट्रभाषा प्रचार–समिति के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा केन्द्रीय हिन्दी संस्थान(गुवाहाटी), असम राज्य राष्ट्रभाषा समिति (जोरहाट), राजकीय हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान (उत्तर गुवाहाटी, असम) आदि संस्थानों की हिन्दी के प्रचार–प्रसार में काफी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। असम एक अहिन्दी भाषी राज्य होते हुए भी है, यहाँ के विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाई जाती है। असम के अधिकांश विद्यालयों में हिन्दी का पाठदान किया जाता है। गौहाटी विश्वविद्यालय तथा उसके अधिनस्त अधिकांश महाविद्यालयों में हिन्दी का अध्यापन किया जाता है। इसके अलावा तेजपुर

विश्वविद्यालय, लखिमपुर महाविद्यालय (औटोनोमौस), नगाँव महाविद्यालय (औटोनोमौस) में स्नाकोत्तर स्तर पर हिन्दी की पढ़ाई कारवाई जाती है। तथा असम में अवस्थित इन विश्वविद्यालयों में हिन्दी विषय में अनेकों शोध कार्य प्रत्येक वर्ष हो रहे है। इस क्षेत्र में असम से प्रकाशित अनेकों पत्र–पत्रिकाओं ने हिन्दी को जनसमान्य तक पहुँचने में अग्रणी भूमिका निभाई। सन 1944–1947 ई. के आस–पास कॉटन कॉलेज में अध्ययनरत विद्यार्थी छगनलाल जैन हिन्दी के प्रचार कार्य से जुड़े। वे अपने सहपाठियों को हिन्दी सीखने तथा पढ़ने को प्रेरित करते। वे सन 1952 ई. से 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के निष्ठावान कार्यकर्ता बनकर असम में हिन्दी भाषा के प्रचार कार्य से जुड़े। उन्होंने पूर्वज्योति मुद्रणालय की स्थापना की, जो उस समय हिन्दी का सबसे बड़ा मुद्रणालय था। उनके विषय में डी. एन. राय कहते है–

"असम आने के पूर्व ही मैंने असम में राष्ट्रभाषा के अग्रणी सेवक छगनलाल जैन जी का नाम सुना था। तब 'पूर्वज्योति' के सम्पादक के रूप में वे असम में हिन्दी की नींव सुदृढ़ कर रहे थे।"[2]

कृष्णनारायण मागध, परेशचन्द्र देव आदि विद्वानों ने भी अपनी मौलिक तथा अनूदित रचनाओं द्वारा हिन्दी का प्रचार तथा उसकी सेवा की।

असम में हिन्दी के विकाश तथा उसके प्रचार प्रसार में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिन्दी अनुवादकों में यज्ञराम खरघरिया फुकन का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने हिन्दी–असमीया कोश के निर्माता थे। इसके अतिरिक्त कल नारायण देव तथा चक्रेश्वर भट्टाचार्य के असमीया से हिन्दी में अनेकों कहानियों का अनुवाद किया। वहीं नेशनल बूक ट्रस्ट की भी इस क्षेत्र में काफी बड़ी भूमिका रही है। *'नेशनल बूक ट्रस्ट'* ने हेम बरुवा के असमीया साहित्य तथा रजनीकान्त बरदलै की उपन्यास *'मिरी जियरी'* का हिन्दी में अनुवाद करवाया। असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित पत्रिका *'राष्ट्रसेवक'* सन 1951 ई. से अबतक असमीया से हिन्दी में लगातार अनुवाद कार्य हो रहे है। अनुवाद के क्षेत्र में साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित पत्रिका *'समकालीन भारतीय साहित्य'* की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस पत्रिका में 23 भारतीय भाषाओं के साहित्य का हिन्दी भाषा में अनूदित रचनाएँ प्रकाशित होती है। सन 1980 ई. से अबतक इस पत्रिका के प्रत्येक अंक में असमिया भाषा से हिन्दी में अनूदित कविता और कहानियाँ लगातार प्रकाशित कर रही

है। यह पत्रिका बहुसंख्यक अनुवादकों के द्वारा अन्य भारतीय भाषाओं से हिन्दी में की गई अनुवाद को प्रकाशित का हिन्दी भाषा तथा साहित्य का विकाश कर रही है। असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने हिन्दी–असमिया शब्दकोश को प्रकाशित कर हिन्दी के विकाश में एक महत्वपूर्ण पदक्षेप आगे बढ़ाया है।

अनुवाद कार्य द्वारा असम में हिन्दी के प्रचार–प्रसार में छगनलाल जैन, परेशचन्द्र देव और कृष्णनारायण 'मागध' का नाम उल्लेखनीय है। कृष्णनारायण 'मागध' गौहाटी विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठाता प्राध्यापक थे। उन्होंने कई महत्वपूर्ण असमीया कृतियों का हिन्दी में अनुवाद कर हिन्दी भाषा तथा साहित्य का विकाश किया। उनकी महत्त्वपूर्ण अनूदित कृतियों में डॉ. बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य द्वारा रचित भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित असमीया कृति *'मृत्युंजय'* का हिन्दी अनुवाद सन 1980 ई. में किया। अनुवाद के क्षेत्र में साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित पत्रिका समकालीन भारतीय साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस पत्रिका में 23 भारतीय भाषाओं के साहित्य का हिन्दी भाषा में अनूदित रचनाएँ प्रकाशित होती है। सन 1980 ई. से अबतक इस पत्रिका के प्रत्येक अंक में असमिया भाषा से हिन्दी में अनूदित कविता और कहानियाँ लगातार प्रकाशित कर रही है। यह पत्रिका बहुसंख्यक अनुवादकों के द्वारा अन्य भारतीय भाषाओं से हिन्दी में की गई अनुवाद को प्रकाशित का हिन्दी भाषा तथा साहित्य का विकाश कर रही है।

असम में हिन्दी के प्रचार–प्रसार के क्षेत्र में दो अनुवाद संस्थाओं का नाम उल्लेखनीय है–शब्द भारती और अनुवाद संस्थान। सन 1999 ई. में शब्द भारती का गठन अहिंदी भाषी राज्य में हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए हुआ था। इस संस्थान के प्रमुख उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह भी है, कि अनुवाद कार्य को बढ़ावा देना तथा प्रांतीय भाषाओं के पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद कर असम में हिन्दी का विकाश करना। निरंतर 1999 से अबतक यह संस्थान कार्यरत है और आज यह असम प्रांत के हिन्दी प्रचारक संस्थानों में प्रमुख है।

इसके अतिरिक्त असमीया के प्रसिद्ध भाषा–वैज्ञानिक डॉ. गोलोकचन्द्र गोस्वामी की महत्त्वपूर्ण कृति *'असमिया वर्ण–प्रकाश'* का हिन्दी में अनुवाद किया, लेकिन दुर्भाग्यवश यह अप्रकाशित है। कमला बरगोहाईं की *'अपत्य'* कहानी तथा हिरेन भट्टाचार्य की *'शिल्प'*, भवेन बरुवा की *'प्रश्न'* आदि लगभग

20 कविताओं का हिन्दी में अनुवाद कर असम में हिन्दी के विकाश की नींव को और भी मजबूत किया। असमिया, बोड़ो आदि भाषाओं की साहित्यक विधाओं का हिन्दी में अनुवाद कर गंगा प्रसाद विमल ने महेश्वर नेउग द्वारा रचित *'आनन्दराम ढेकियाल फुकन'* शीर्षक पुस्तक का सन 1991 ई. में हिन्दी में अनुवाद किया। असम में हिन्दी के प्रचार–प्रसार में महिला अनुवादकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सन 2008 ई. में स्वर्गीय डॉ. शांति थापा द्वारा सम्पादित 'लोहित घाटी की कहानियाँ' नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हुई, जिसमें 77 असमीया कहानियों का हिन्दी अनुवाद हुआ। हिन्दी भाषा के विकाश के क्षेत्र में यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य था। महिला अनुवादकों में डॉ. अदिति सइकिया, बिन्दु डेका चौधुरी, डॉ. ज़ीनत अहमद दास, डॉ. शान्ति थापा, हीराबाला दास, मंजूमणि सइकिया, मिनती लहकर, मुन्नी सापकोटा, मंजूमणि कलिता फुकन, डॉ. दीपा डेका, बन्ति आशा काकती तथा मालविका शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। असमीया कहानियों की हिन्दी में अनुवाद करने वाली महिला अनुवादको में डॉ. शान्ति थापा ने अलकानन्दा दत्ता, कस्तुरी सिंह, गैरिका बरुवा अहमद, गौरी सइकीया, नवनीता गगै, पदुमी गगै, प्रीति बरुवा की कहानियों का हिन्दी में *जोनबिरी का मोह, एक पल का अनुभव, दिल में तुम्हारा चेहरा, अंधेरे में एक चेहरा, पाश, अर्द्धांगिनी, स्वर्गच्युति* नाम से अनुवाद किया। बिन्दु डेका चौधुरी द्वारा (सूरजमुखी का सपना, एक सपने की मृत्यु और योद्धा का जन्म–कथा, जिजीविषा, आरोहण, कालश्रोत, आक्रान्त, आन्तरिक, जन समुद्र में सुभद्रा, महानगर में उद्धव, माधव, बल्लू आदि, सौत, अतृप्ति फेंग्सुई), डॉ मालविका शर्मा (ऐकान्तिक वैयक्तिक संवाद के साथ एक रात), हीराबाला दास (चक्रव्यूह से बाहर), डॉ. जीनत अहमद दास (आर्किड की जड़, एक पुरुष की तलाश, भंवर, बैसाख की पहली सुबह, तपस्या, संजीवनी सुधा, जीवन की सुनहरी राहें), अदिति सइकीया (पीपल की छाँह, कालीया तिजोरी की कहानी,)

अनुवादकों में डॉ भूपेन्द्र राय चौधरी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने असमीया से हिन्दी में अनुवाद के जरिए हिन्दी का प्रचार–प्रसार तो किया ही साथ ही हिन्दी के *प्रेमचन्द्र, अमृतराय* जैसे साहित्यकार की रचनाओं का असमीया में अनुवाद कर हिन्दी साहित्य को असमीया पाठकों तक पहुँचाया। उनकी महत्त्वपूर्ण अनूदित कृतियों में मंजू बरा की कहानी संग्रह *प्रेम–पतझड़*

जिसका प्रकाशन सन 2010 ई. में हुआ। अनुवादक के रूप में आचार्य डॉ. देवेनचन्द्र दास की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। उन्होंने कार्बी रामायण छाविन आलुन का हिन्दी अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त उनके अन्य अनुवाद कार्य है– शत्रांजय (मध्ययुगीन असमीया काव्य), गीति नारायण, अद्भुत रामायण, भट्टदेव की कथा–गीता, श्री श्री उमानन्द देवालय, बंग्ला से प्राणतोषजी तंत्र। उदयभानु पांडेय ने हिन्दी भाषा में मौलिक लेखन के साथ ही कार्बी लोक कथाओं का हिन्दी में अनुवाद किया। इसी सूची में निरूपमा फुकन, नावरुण वर्मा, चित्र महंत, लोकनाथ भराली, डॉ. थानेश्वर शर्मा, गिरिजा बरुवा, डॉ. भूषण पाठक का नाम अनुवादक के रूप हिन्दी को समृद्ध किया है। इसके अतिरिक्त भी कई अनुवादकों के नाम लेना संभव नहीं हो पाया है। अनुवादक दिनकर कुमार द्वारा अनीस उज ज़मान तथा नीलिमा ठाकुरिया हक, लुत्फ़ा हानूम सेलिमा बेगम की कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया। नीता बैनर्जी ने उमेश बोड़ो और समीर ताँती की कविताओं तथा अतुलनन्द गोस्वामी की कहानी *(टिफ़िन बाक्स)* का अनुवाद किया। सुनीता अगरवाला ने अरुपा पतंगिया की कहानी *'देहरी'* किशोर कुमार जैन ने स्वयं की कविताओं का, हरकीरत हीर ने कुंज मेधी की कविताओं का, राजीव कुमार ने राजीव बरुवा की कई असमीया कविताओं का हिन्दी अनुवाद समकालीन भारतीय साहित्य में प्रकाश हुआ। जिनमें हर कवि के सीने में, बहुत दूर छोड़ आया, रातभर, कोयल की कूक, देखा था। सन 2021 ई. में लक्ष्मीनाथ बेजबरूवा *'कका आरू नाती'* कहानी संग्रह का अनुवाद दिनकर कुमार ने *'दादा और पोता'* नाम से किया है। अनुवादक विजय कुमार यादव ने रूमी लस्कर बोरा की कहानी का अनुवाद 'गणित के पृष्ठ' नाम से किया, जो भाषा पत्रिका में सन 2024 ई. में प्रकाशित हुआ। महिला असमिया अनुवादक नूरजहाँ रहमातुल्लाह द्वारा सैयद अब्दुल मलिक की कहानी का हिन्दी में 'अनमेल कहानी' नाम से अनुवाद किया जो 'भाषा' पत्रिका में सन 2024 ई. में प्रकाशित हुआ। असम में अनुवादकों की एक लंबी सूची है, सबका नाम इस छोटे से शोध पत्र में ले पाना संभव नहीं हो पाया है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि असम में हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अनुवाद तथा अनुवादकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्तमान समय में भी अनुवाद के माध्यम से असम में हिन्दी के प्रचार–प्रसार का कार्य निरंतर

आगे बढ़ रहा है। हिन्दी भाषा की लोकप्रियता के कारण यह भाषा असम में बोली और समझी जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चतुर्वेदी, पंकज तथा अन्य (सं), पुस्तक संस्कृति, अंक–1(जनवरी–फरवरी), 2021: नई दिल्ली, नेशनल बूक ट्रस्ट, पृ. 38
2. चक्रवर्ती, मुकुल तथा अन्य, मृंमोय, vol-1, Issue-1, जून, 2003, राधगोविन्द बरुवा महाविद्यालय लिटारेरी फोरम, गुवाहाटी, पृ.132

सहायक ग्रन्थों की सूची

1. थापा, शान्ति(सं), लोहित घाटी की कहानियाँ, प्रथम संस्करण: फरवरी, 2008, असम लेखिका संस्था, गुवाहाटी
2. गंगोपाध्याय, सुनील तथा अन्य, समकालीन भारतीय साहित्य, अंक 155, मई–जून, 2011, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य और हाशिया विमर्श



डॉ. गौरव कुमार मिश्र

SJAIN PUBLICATION

Copyright

Title: "हिन्दी साहित्य और हाशिया विमर्श"

Copyright ©: डॉ. गौरव कुमार मिश्र©2025

First printing: SJAIN PUBLICATION

ISBN: 978-81-995403-0-9

MSME No: UDYAM-DL-06-0139534

Cover Design: SJAIN PUBLICATION

Editor: Supriya Jain

E-mail: sjainpublication@gmail.com

Price: 409/-

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, distributed, or transmitted in any form or by any means, including photocopying, recording, or other electronic or mechanical methods, without the prior written permission of the publisher, except in the case of brief quotations embodied in critical reviews and certain other non-commercial uses permitted by copyright law.

अनुक्रमणिका

Copyright 2
भूमिका 3
अनुक्रमणिका 8
1. अध्याय–1 10
हिंदी साहित्य और आदिवासी महिला साहित्यकारों का योगदान
ईश प्रिया किन्डो
2. अध्याय–2 33
'मीडिया और दलित विमर्श: अवसर और चुनौतियाँ'
आकृति, डॉ. बिंदु कनौजिया
3. अध्याय -3 50
समकालीन हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श
डॉ. सुनीता त्रिपाठी
4. अध्याय-4 70
'आओ मिलकर बचाए' में अभिव्यक्त अस्मिता संघर्ष
कसीरा जहाँ
5. अध्याय-5 80
आदिवासी विस्थापन और डिजिटल इंडिया
डॉ महमुदा खानम
6. अध्याय-6 103
प्रेमचंद की कहानियों में दलित विमर्श

अध्याय-4

'आओ मिलकर बचाए' में अभिव्यक्त अस्मिता संघर्ष

कसीरा जहाँ

संघर्ष जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया है। मनुष्य को अपने जीवनकाल में अनेकों संघर्ष का सामना करना पड़ता है। यह संघर्ष कभी वैयक्तिक होता है तो कभी समूहिक। कहीं मनुष्य जीवन जीने के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुओं के लिए संघर्ष करता है, तो कहीं अपने अस्मिता, अस्तित्व, अपनी सत्ता या अपनी पहचान के लिए संघर्ष करता है।

संघर्षपूर्ण जीवन में मनुष्य को अपने निजी या समूहिक पहचान को स्थापित रखने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। अपने व्यक्तिगत तथा समूहिक पहचान के किया गया संघर्ष अस्मिता संघर्ष है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने कुछ वर्ग की संस्कृति को संकटजनक स्थिति में डाल दिया है। उनके समक्ष अस्मिता की रक्षा का गुरूदायित्व आ गया है। 'अस्मिता' शब्द का सामान्य अर्थ है, पहचान। निजता का बोध ही अस्मिता है। लेकिन

इस शब्द का अर्थ पहचान तक सीमित न रहकर बहुअर्थी बन जाता है।

अस्मिता का अर्थ एक व्यक्ति की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति की पहचान के साथ-साथ उसके मानवाधिकारों की पहचान है। 'अस्मिता' शब्द को विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया हैं, जिनमें कुछ इसप्रकार हैं:–

- **वर्धा शब्दकोश**-

"अपने होने का भाव, हस्ती, हैसियत, अपनी सत्ता की पहचान, अहंता, अहंकार, अस्तित्व, विद्वमानता, मौजूदगी आदि।"1

- **राजेंद्र वर्मा**-

"अस्मिता अपनी निजी पहचान के साथ-साथ उस क्षेत्र और समाज की पहचान भी है, जो हमारे संदर्भ तय करते है।"2

- **अर्चना वर्मा**-

"अस्मि शब्द अस+मिन से बना है। अस्मि अर्थात मैं हूँ। 'अस्मि' की भाववाचक संज्ञा 'अस्मिता' है। इस शब्द से स्व का बोध होता हैं।" 3

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अस्मिता शब्द किसी व्यक्ति को सामाजिक स्थिति की पहचान, उसकी आर्थिक

स्थिति की पहचान, साथ ही उसके मानवाधिकारों की पहचान भी कराता है।

'अस्मिता' वैश्वीकरण के दौर में एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उभरा है। आधुनिक समय में जहाँ विभिन्न देशों के बीच कई क्षेत्रों में परस्पर निर्भरता और एकीकरण की प्रक्रिया देखी जाती है, वहीं अस्मिता के प्रति संकट भी तीव्रता से महसूस किया जा सकता है।

इससे एक बात स्पष्ट होती है, अस्मिता-विमर्श 'वैश्विक एकरूपकता' के प्रतिरोध के रूप में उपजा एक सशक्त स्वर है।

'आओ मिलकर बचाएँ' निर्मला पुतुल की कविता है। संथाली भाषा में लिखी इस कविता का हिंदी रूपांतरण अशोक सिंह ने किया है। निर्मला पुतुल उन रचनाकारों में से है, जिन्हें कम लिखकर अधिक प्रसिद्धि पाई है।

'आओ मिलकर बचाएँ' कविता में अस्मिता बोध की चेतना तथा उसकी रक्षा के लिए संघर्ष का आह्वान सुनाई देता है। यहाँ कवयित्री ने समूहिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्षरत दिखाई देती है।

कवयित्री ने प्रस्तुत कविता में मनुष्यता, समाजिकता, मूल्यों का पतन, परस्परता का टूटन, बढ़ती

हुई आत्मकेंद्रिता के कारण त्यागशील संस्कृति के बरक्स को दिखने का प्रयत्न किया है।

कवयित्री निर्मला पुतुल की बहुचर्चित कविताओं में से एक है। निर्मला पुतुल की कविता 'आओ मिलकर बचाएँ' उस आदिवासी समाज का चित्र खींचती है, जो संकट तथा संत्रास के भयावह दौर से गुजर रहा है। जिसके सामने अनिश्चितता और खतरनाक परिणाम मंडरा रहे है।

इसमें लेखिका ने अपने आदिवासी समाज को उन्हीं की जमीन से विस्थापित होते देख संपूर्ण आदिवासी समाज के अस्तित्व को संकट में पाती है। उन्होंने लिखा है-

"अपनी बस्तियों को
नंगी होने से
शहर की आबो-हवा से बचाएँ उसे"4

उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री अपने समाज के अस्तित्व की रक्षा करने के लिए सचेत करती है। वह आदिवासी लोगों को आह्वान करती है अपनी जमीन को सुरक्षित करने के लिए। अपनी जमीन से विस्थापित न होने के लिय कहती है।

अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने का आह्वान देती है। आलोच्य कविता में निर्मला पुतुल ने जहाँ

आदिवासी लोगों की अधिलक्षणों को गिनाया है, वहीं उनकी विसंगतियों को भी तल्लीनता से उकेरा है।

लेखिका ने आदिवासी लोगों की सरलता का लाभ उठाने वाले शिक्षित समाज के लोलुप दिक्कु और व्यवसायीयों की ओर संकेत दिया है, जो थोड़े से पैसे में उनकी जमीन हथिया लेते है।

जिसके कारण संथाल आदिवासी लोगों को उन्हीं के घर यानि जंगलों से विस्थापित होना पड़ रहा है। आदिवासी समाज के लिए जंगल उनकी विश्वास, आस्था तथा उनकी पहचान का केंद्र स्थल रहा है।

जंगल और आदिवासी के बीच सहजीवी का संबंध है। जंगल के होने पर ही संथाल आदिवासी का अस्तित्व तथा उनकी संस्कृति सजीव है।

वहीं इनके कारण ही जंगल का अस्तित्व बचा हुआ है। अतः निर्मला पुतुल अपने अस्तित्व को बचाने के लिए अपने बस्तियों को यानि अपने घरों को बचाने के संघर्ष करने की बात कहती है।

संस्कृति धरोहर है। संस्कृति के आधार पर ही एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से, एक समूह तथा समाज को दूसरे समूह या समाज से पृथक किया जा सकता है।

आदिवासी संस्कृति की पहचान जल, जमीन और जंगल से ही बनती है। नदियाँ, जंगल तथा खेती योग्य भूमि उनकी संस्कृति का प्रतीक है। इनसे ही संथाली आदिवासियों को एक पृथक पहचान मिला है।

लेकिन शहरी संस्कृति की बढ़ती सीमा ने संथाली संस्कृति को संकट में डाल दिया है। आदिवासी समाज की संस्कृति ह्रास करती हुई शहरी संस्कृति चारों तरफ फैल चुकी है। स्वार्थी मनोवृति के कारण थोड़े से अर्थ का लोभ दिखाकर उनकी संस्कृति से उन्हें बेदखल किया जा रहा है।

कवयित्री अपनी संस्कृति के प्रति शंकालु दिख पड़ती है। तथा अपनी संस्कृति को संरक्षित करने के आह्वान करती है।

जीव-जंतुओं का शिकार करना संथाली आदि-वासियों की संस्कृति है, अतः कवयित्री ने धनुष की डोरी को, तीर के नुकीलापन और कुल्हाड़ी की धार को बचाने के लिए जूझने की बात कहीं है।

खेती-बड़ी तथा पशु-पालन करके जीवन-यापन करने वाले संथाली लोगों कवयित्री ने जंगल की ताजी हवा, नदियों के पानी की निर्मलता को, साथ ही फसलों की लहलहाहट को और पशुओं के लिए

हरी-हरी घास को सुरक्षित रखने के लिए कहती है।

साथ ही अपनी संस्कृति के वाहक गीतों के धुनों को, नाचने के लिए खुला भी संरक्षित करने का आह्वान लोगों से करती है। उदाहरणस्वरूप –

"धनुष की डोरी
तीर का नुकीलापन
कुल्हाड़ी की धार
जंगल की ताजा हवा
नदियों की निर्मलता
पहाड़ों का मौन
गीतों की धुन
मिट्टी का सोंधापन
फसलों की लहलहाहट"5

भाषा मूलतः संस्कृति की वाहक होती है। भाषा के साथ हमारी परंपरा हमारी जिजीविषा कालाति-क्रमण करती है। यह एक समुदाय की पहचान होती है। यह सामाजिक संपदा है। एक भाषा के मृत होने का तात्पर्य है एक समुदाय या एक जाति के अस्तित्व की समाप्ति।

एक भाषा के मरने से जाति या समुदाय के इतिहास, उसका भूगोल, सांस्कृतिक मूल्य तथा उस समुदाय के सौंदर्य चेतना का अंत होता है। जो

एक वर्ग विशेष के लिए घातक है। कवयित्रि का जन्म झारखंड के एक संथाली परिवार में हुआ था। संथाली भाषा उनकी मातृभाषा थी।

मातृभाषाई प्रेम उनमें अत्यधिक था। बचपन से ही उन्होंने झारखंड के उन पहाड़ी इलाकों में बाहरी संस्कृति को फैलते हुए देखा है। बाहरी संस्कृति का असर उन संथाली आदिवासी भाषा पर पड़ा।

जिसके कारण उनकी भाषा विलुप्त होने लगी। वर्तमान समय में झारखंडी संथाली भाषा अपने अस्तित्व के लिए जूझ रही है। अतः कवयित्री ने संथाली आदिवासी लोगों को अपनी संथाली भाषा को बचाने के लिए कहती है-

"अपने चेहरे पर
संथाल परगना की माटी का रंग
भाषा में झारखंडीपन"6

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि आदिवासी समाज वन और कृषि पर आधारित होता है। और वही उससे छिन लिया जाए तो व अस्तित्वहीन हो जाएगा।

निर्मला पुतुल की कविता 'आओ मिलकर बचाएँ' में अपनी भाषा, जमीन तथा संस्कृति के लिए संघर्ष करते हुए देखा जाता है। निर्मला पुतुल की

कविताओं में संथाली आदिवासी समाज के प्रति स्वार्थी मनोवृति तथा शोषण के विरुद्ध प्रतिरोधी स्वर दिखाई देता है।

संदर्भ सूची-

1. सक्सेना, रामप्रसाद (सं). वर्धा हिन्दी शब्दकोश. प्रथम प्रकाशन. वर्धा: महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय. 2013, पृ. 260
2. राजेन्द्र, यादव. हंस. जून 2003, पृ. 9
3. वर्मा, अर्चना. अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर. प्रथम प्रकाशन. दिल्ली: मेधा बुक्स. 2008, पृ. 31
4. hindwi.org/kavita/aa

सहायक ग्रंथ-

1. शशि, डॉ.शशि भूषण कुमार, भूमंडलीकरण: साहित्य समाज और संस्कृति, प्रथम संस्करण, 2013 ऐक्सिस बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
2. सिंह रसाल तथा अन्य, आदिवासी अस्मिता वाया कथा-साहित्य, प्रथम संस्करण, 2014, अनामिका पब्लिशिंग एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड, नई दिल्ली

3. गुप्ता रमणिका, आदिवासी साहित्य यात्रा, पहला संस्करण, 2008, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
4. मीना गंगा सहाय, आदिवासी साहित्य विमर्श, प्रथम संस्करण, 2014, अनामिका पब्लिशिंग एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड, नई दिल्ली
5. देसाई डॉ. बापूराव, आदिवासी साहित्य विधा: शास्त्र और इतिहास, प्रथम संस्करण, गरिमा प्रकाशन, कानपुर

REFRAMING WOMANHOOD

DISCOURSES, IDENTITIES AND RESISTANCE

Edited by
KABITA BHUYAN
JINI RANI BORO

REFRAMING WOMANHOOD:

DISCOURSES, IDENTITIES AND RESISTANCE

(A Multilingual Volume of Research Articles)

Edited by
Kabita Bhuyan
Jini Rani Boro

GLOBAL
PUBLISHING
HOUSE INDIA

Bhubaneshwar, Guwahati, Hyderabad, N-Delhi, Visakhapatnam

Copyright © May, 2026, Editors

Editorial Board:

Advisors
Dr. Pranjit Kumar Nath
Kakoli Chetia
Dr. Malabika Sarma
Sarmistha Das

Editors
Kabita Bhuyan
Jini Rani Boro

Offices:
Bhubaneswar, Guwahati, Hyderabad, New Delhi, Visakhapatnam

All rights reserved. No part of this book or parts thereof may be reproduced stored in a retrieval system or transmitted in any language or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise without the prior written permission of the copyright owners and the publishers.

The facts stated and opinions expressed in this book are the sole responsibility of the authors. The editors and the publisher are not liable to any person or entity with respect to any loss or damaged caused, or alleged to have been caused by the articles included in this volume.

ISBN: 978-93-47586-30-9

Published by Global Publishing House India, Door No. 13-1-1, Vigneshwara Enclave, Anthony Nagar, Maharanipeta Visakhapatnam-2, AP, India. On behalf of Women's Studies Cell, R G Baruah College, Fatasil Ambari, Guwahati-781025

Contents

1. Imparting Ideals; Reframing Beliefs: A Discourse on Motherhood & Experience

   Bhaskar Jyoti Barman 15

2. Reproductive Health of Adolescent Girls and the Constitutional Provisions

   Dr. Bidisha Bora 25

3. The Care Economy: Understanding Women's Unpaid Domestic and Care work

   Biswajit Das 32

4. Motherhood—A Profound Journey of Transformation

   Dr. Deepa Sharma & Dr. Sristisri Upadhyaya 41

5. Digital Feminism, Online Activism, and Cyber Security

   Dhrijumoni Das 45

6. Women's Leadership and Participation in Politics: Challenges and Opportunities

   Dr. Dipankar S Talukdar 52

7. Women Leadership in Indian Freedom Struggle of India-A Special Focus on Assam

   Eli Kumari Das 70

8. Position of Women in Ahom Period

   Dr. Himadri Gogoi 75

9. From Silence to Story: Women's Voices and Re-visions of Canonical Texts and Epics

   Jasmine A. Choudhury 83

10. Her Voice, Her World: Indigenous Knowledge and the Politics of Resistance in Karbi Women's Narratives

Dr. Kadombini Terangpi 94

11. Women's Health and Well-being: Intersectional Perspectives

Dr. Karabi Kakati 102

12. Economic Determinants of Linguistic Behaviour: A Socioeconomic Analysis of Assamese Language Evolution

Manoj Kr Das 124

13. Education, Voice, and Resistance: Negotiating Identity Beyond Tradition in Easterine Kire's A Terrible Matriarchy

Pranita Kalita 131

14. Gendered Lives and Quiet Resistance in Prajwal Parajuly's "The Cleft"

Priyanka Raya 139

15. Women at the Helm: Need of Gender-Inclusive Leadership

Rahul Das 147

16. Globalization and Women's Lives: Negotiating Work, Family, and Identity in a Global Era

Dr. Sahnaz Sultana 156

17. A Feminist Cartography of Loss: Displacement, Belonging, and Women's Memory in the Film Mati

Sarmistha Das 162

18. Women's Leadership in Higher Education: Challenges, Enablers and Emerging Opportunities

Syeda Maboda Ahmada 168

19. Participation of Women in Higher Education Institutions of Assam: A Statistical and Policy Analysis

Dr. Utpal Kalita 178

20. নির্মল প্রভা বৰদলৈৰ সাহিত্য সৃষ্টি আৰু নাৰীৰ অস্তিত্ব

ড° লীলা কলিতা 192

21. উত্তৰকালীন অসমীয়া উপন্যাস আৰু নাৰীৰ অৱস্থান
ড° লিপিকা তালুকদাৰ 199

22. मोहन राकेश के नाटक 'आधे-अधूरे' में स्त्री विमर्श
डॉ करबी तालुकदार 212

23. अमृता प्रीतम की आत्मकथाओं में नारी मुक्ति का स्वर
कसीरा जहाँ 222

24. उषा प्रियंबदा की नारी पात्रों में आत्मनिर्णय की चेतना :'पचपन खंभे लाल दीवारे' और 'रुकोगी नहीं राधिका' के संदर्भ में
डॉ मालबिका शर्मा 232

25. मन्नू भंडारी के उपन्यास में स्त्री का बदलता स्वरः परंपरा से आधुनिकता तक
सुनिता स्वर्गीयारी 240

26. *খনামিহিরের ঢিপি* ঃ সভ্যতার বিবর্তনের ধারায় নারীর সামাজিক অবস্থান
অমৃতা সিকিদার, সঞ্জয় ভট্টাচার্য 250

27. নবনীতা দেবসেনের রূপকথা সমগ্র ঃ নারীত্বের এক ভিন্ন স্বর
তপতী দত্ত 266

अमृता प्रीतम की आत्मकथाओं में नारी मुक्ति का स्वर

कसीरा जहाँ*

भूमिका

भारतीय महिला साहित्यकारों में अमृता प्रीतम एक बहुत ही चर्चित नाम है। पंजाब में जन्मी अमृता प्रीतम की साहित्यिक यात्रा की शुरुआत कविता लेखन से होती है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी अमृता प्रीतम ने कविता, कहानी, उपन्यास तथा आत्मकथा लेखन द्वारा भारतीय साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने अपने लेखन के लिए पंजाबी भाषा को माध्यम बनाया, परंतु उनकी लेखनी कई भाषाओं में अनूदित हुई। स्वयं एक नारी होने के नाते अमृता प्रीतम ने नारी की पीड़ा को अनुभव कर उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त भी किया। उनके द्वारा लिखित दों आत्मकथाओं- 'रसीदी टिकट' और 'अक्षरों के साये' में उनके जीवन के संघर्षो के माध्यम से एक स्त्री के जीवन के संघर्ष को नजदीकी से जाना जा सकता है। दोनों आत्मकथाओं में स्त्री मुक्ति का स्वर सुनाई पड़ता है।

साहित्य का परिसर विशाल है। इस विशाल परिसर में आत्मकथा विधा एक महत्वपूर्ण विधा है। आत्मकथा एक लेखक के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन का दस्तावेज़ होने के साथ के साथ ही उस समय के इतिहास का संग्रहक भी होता है। हिन्दी आत्मकथा के विकाश की एक सुदीर्घ यात्रा रही है। पुरुष साहित्यकारों की तुलना में महिला साहित्यकारों ने आत्मकथा लिखना बहुत बाद में शुरू किया। आत्मकथा लिखकर विभिन्न महिला लेखकों ने अपने जीवन के संघर्षो को अभिव्यक्त किया है। अमृता प्रीतम, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, मामनी रायसम गोस्वामी, निर्मलप्रभा बरदलै, निरूपमा बरगोहाई आदि साहित्यकारों ने अपनी जीवन की कहानी को आत्मकथा में शब्दबद्ध किया है। इनकी आत्मकथाओं में वर्णित संघर्ष

*सहायक अध्यापक, हिन्दी विभाग, आर. जी. बरूवा कॉलेज

समाज की अधिकांश महिलाओं की कहानी है। अतः महिला लेखिकाओं की आत्मकथा अनेकों महिलाओं के प्रेरणा का स्त्रोत है। महिला आत्मकथाओं से आम महिलाएं भी अपने संघर्षो से लड़कर अपने जीवन को सार्थक तथा सफल बनाने की प्रेरणा पाती है।

अमृता प्रीतम भारतीय साहित्य जगत का एक ऐसा नाम है, जिन्होंने अपनी लेखनी से न केवल भाषाओं की सीमाओं को तोड़ा बल्कि यह भी प्रमाणित किया कि एक साहित्यकार की भाषा, शैली तथा उसका विचार देश की सीमा से नहीं बांधी जा सकती। अमृता प्रीतम ने अपनी रचनाएँ पंजाबी भाषा में लिखी परंतु कई भारतीय भाषाओं में उनकी रचनाएँ अनूदित हुई। अमृता प्रीतम में अपनी रचनाओं में जिस विषय-वस्तु को लिया है, वह आज के संदर्भ में भी इतनी प्रासंगिक है, कि पाठक अनायास ही उनकी तरफ आकर्षित हो जाते है। अविभाजित भारत के पंजाब में अमृता प्रीतम का जन्म हुआ था। मात्र 11 वर्ष की अवस्था में ही उनकी माता तथा 16 वर्ष की आयु में उनके पिता की मृत्यु हो गई। साहित्य से जुड़ने की प्रेरणा अमृता प्रीतम को उनके पिता द्वारा मिली। 11-12 वर्ष की आयु से ही उन्होंने लिखना शुरू किया। अतः उनकी साहित्यिक यात्रा बहुत ही कम उम्र में शुरू हो गई।

अमृता प्रीतम पंजाबी साहित्य का वह नाम है, जो आज भी महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण आवाजों में से है। उनका जन्म 31 अगस्त सन 1919 पंजाब के गुजराँवाला नामक स्थान में हुआ था। बहुमुखी प्रतिभा की धनी अमृता प्रीतम ने कहानी, उपन्यास, कविता, जीवनी, आत्मकथा तथा पंजाबी लोकगीतों की रचना की। 'रसीदी टिकट' तथा 'अक्षरों के साये' दोनों ही अमृता प्रीतम की आत्मकथाएँ है। जिसका प्रकाशन सन 1976 ई. तथा 1996 ई. में हुई। 'रसीदी टिकट' लेखिका की पहली आत्मकथा है। आलोच्य आत्मकथा में लेखिका ने अपने सामाजिक जीवन के साथ ही व्यक्तिगत जीवन को भी साहसिकता के साथ व्यक्त किया है। 'अक्षरों के साये' अमृता प्रीतम की दूसरी आत्मकथा है, जिसे 'रसीदी टिकट' का दूसरा भाग कहा गया है। दोनों आत्मकथाओं की मूल भाषा पंजाबी है। इन आत्मकथाओं का अनुवाद भारतीय कई भाषाओं के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं में हुआ। अपनी आत्मकथाओं 'रसीदी टिकट' तथा 'अक्षरों के साये' में अमृता प्रीतम ने अपनी जीवन की अनेकों अव्यक्त कथाओं अभिव्यक्ति के साथ ही नारी संबंधी कुछ विषयों पर अपने विचारों को दृढ़तापूर्वक रखा है। उनकी आत्मकथाएँ 'रसीदी टिकट' और 'अक्षरों के साये' केवल व्यक्तिगत जीवन-वृत नहीं है, बल्कि स्त्री के आत्मसंघर्ष, आत्मबोध और नारी-मुक्ति की चेतना का सशक्त दस्तावेज़ हैं। इनमें बचपन से लेकर आज तक के अपने जीवन के

सभी अध्यायों और अनुभवों को वह अभिव्यक्त करती है। अमृता प्रीतम ने अपनी आत्मकथा में स्त्री के भीतर पल रहे विद्रोह, स्वतन्त्रता-बोध और सामाजिक बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है।

विश्लेषण

'मुक्ति' शब्द का अर्थ है- बंधन, दुख या आवागमन से स्वतन्त्रता। 'मुक्ति' शब्द को बंधन शब्द के विपरार्थ प्रयोग किया जाता है। स्त्री मुक्ति से तात्पर्य है - पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के लिए बने बंधन से स्वतन्त्र होने का स्वर। ऐसा कहा जाता है, कि जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती है, वहीं देवताओं का निवास होता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि पुरुष प्रधान देश में स्त्रियों को समाधिकार भी नहीं दिया जाता। उसे दोयम दर्जे का जीवन जीना पड़ता है। समाज में एक स्त्री की छवि को अबला के रूप में देखा जाता है। माखनलाल चतुर्वेदी ने "अबला जीवन हाय तुम्हारी यहीं कहानी, आँचल में दूध और आँखों में पानी" कहकर स्त्री के इसी रूप की ओर संकेत किया है। स्त्री को अबला और कमजोर मानकर उसके अस्तित्व को कहीं न कहीं दबा दिया जाता है। पुरुषप्रधान समाज में स्त्री को उसके लिए बनाई गई निदिष्ट आचरण में रहना पड़ता है। स्त्री को मानव के रूप में स्वीकार करना पुरुष सत्तात्मक समाज के लिए सबसे बड़ा प्रश्न है। स्त्री मुक्ति से तात्पर्य है - पुरुषोचित गुणों को अपनाना नहीं बल्कि समाज द्वारा निर्मित स्त्री रूप से स्वतंत्रता पाना। स्त्री मुक्ति का अर्थ मात्र शारीरिक रूप से मुक्ति नहीं बल्कि सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी दृष्टियों से मुक्ति है।

स्त्री मुक्ति एक वैचारिक आंदोलन है। यह अंतराष्ट्रीय स्तर के स्त्री मुक्ति आंदोलन द्वारा स्त्री की आस्तित्व सामने आई। स्त्री मुक्ति स्वर की एक लंबी परंपरा रही है, जो 19 वीं शती के अंतिम चरण में और उन्नीसवीं शताब्दी में विकाशित हुई। 20वीं शताब्दी तक आते आते यह स्वर प्रतिरोधमूलक आंदोलन तीव्र रूप लेती है। घरेलू हिंसा के विरोध तथा लिंग-भेद विरोधी आंदोलन ने स्त्री मुक्ति आंदोलन को अधिक सक्रियता दिया। घरेलू हिंसा का प्रतिरोध कर स्त्री ने पति-पत्नी के समाधिकार तथा अपनी आत्मसम्मान की बात कहीं, वहीं लिंगभेद विरोधी आंदोलन ने स्त्री पुरुष के समानता की माँग की। लिंग-भेद के कारण स्त्रियाँ शिक्षा से कोसों दूर थी। लेकिन शिक्षा के प्रसार ने स्त्री आत्मबोध का भाव जागृत किया। वह अपने प्रति शोषण के खिलाफ सचेत हुई तथा उसका विरोध करना शुरू किया। स्त्री मुक्ति

के स्वर के उभरने का मूल कारण सामाजिक असमान व्यवस्था। स्त्री ने सामाजिक असमानता से लड़ने के लिए कलम को अस्त्र बनाया। आत्मकथा लेखन के माध्यम से स्त्री लेखिकाओं ने अपने व्यक्तिगत संघर्ष के माध्यम से समाज में स्त्री की स्थिति और उनके संघर्ष को दर्शाया है। स्त्री का आत्मकथा लेखन ही उसके मुक्ति के स्वर को ध्वनित करता है, क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा एक महिला का अपने व्यक्तिगत जीवन को सार्वजनिक करने का कार्य कठिन होता है।

'रसीदी टिकट' में नारी-मुक्ति का स्वर

आलोच्य आत्मकथा में लेखिका ने उनका बचपन, वैवाहिक जीवन, साहित्यिक संघर्ष और मानसिक पीड़ा चित्रित को किया है। उन्होंने पितृसत्तात्मक समाज की बेड़ियों को तोड़ने का प्रयास दिखाई देता है। इस रचना में नारी मुक्ति का स्वर निम्नलिखित रूपों में उभरते है-

1. भावनात्मक और वैचारिक स्वतन्त्रता संबन्धित मुक्ति का स्वर

इस आत्मकथा में आत्मकथार के भावनात्मक और वैचारिक स्वतन्त्रता संबन्धित मुक्ति का स्वर प्रतिध्वनित होता है। लेखिका ने अपनी आत्मकथा में अपने बचपन की एक घटना का उल्लेख किया है। लेखिका नानी तथा पिता के साथ रहती थीं। घर पर नहीं परंतु रसोई पर नानी का राज हुआ करता था। एक दिन लेखिका ने ध्यान से देखा तो रसोई की एक ओर कूल तीन गिलास अन्य बर्तनों से हटाकर रखे हुए है। ये बरतनें तभी व्यवहृत होती जब उनके घर कोई मुसलमान दोस्त आते थे और उन्हें चाय या लस्सी पिलानी होती थी और उसके बाद माँज-धोकर फिर वहीं रख दिए जाते थे। यह देखकर लेखिका को को बहुत क्रोध आता है। वह उस समय धार्मिक भेदभाव का बड़ा प्रकोप था। अतः नानी ने उन बर्तनों को जो मुसलमानों के लिए प्रयोग में लाये जाते थे, उन्हें घर के बर्तनों से अलग रखा। लेखिका ने नानी के कार्य का विरोध किया। लेखिका का यह पहला विद्रोह था। वह नानी से लड़ पड़ी और जिद पकड़ लिया कि जबतक यह भेदभाव नहीं मिटाया जाएगा तबतक वह अन्य किसी बर्तन में कुछ भी नहीं खाएँगी या पिएंगी। यह खबर जब पिता तक पहुंची तब पिता ने बर्तनों के इस भेदभाव को हटाया। इसका उल्लेख करती हुई लेखिका कहती है-

"सो, उन तीन गिलासों के साथ मैं भी एक चौथे गिलास की तरह रील-मिल

गई और हम चारों नानी से लड़ पड़े। वे गिलास भी बाकी बर्तनों को नहीं छू सकते थे, मैं भी जिद पकड़ ली कि मैं और किसी बर्तन में न पानी पीऊंगी, न दूध-चाय। नानी उन गिलासों को खाली रख सकती थी, लेकिन मुझे भूखा या प्यासा नहीं रख सकती थी, सो बात पिताजी तक पहुँच गई। पिताजी को इससे पहले पता नहीं कि कुछ गिलास इस तरह अलग रखे जाते हैं। उन्हें मालूम हुआ, तो मेरा विद्रोह सफल हो गया। फिर न कोई बर्तन हिन्दू रहा, न मुसलमान।"

(प्रीतम, 1976:11)

उपरोक्त विवेचन यह स्पष्ट होता है कि लेखिका अमृता प्रीतम में वैचारिक तथा भावात्मक स्वतन्त्रता बचपन से थी।

2. सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और मुक्ति का स्वर

अमृता प्रीतम की माता का देहांत बचपन में ही हो गया था। पिता के आगाध प्रेम तथा नानी की स्नेहमयी छत्रछाया में वह पली बढ़ी। बिन माता की बेटी होने के कारण साथ ही पिता के धार्मिक अगुआ होने के कारण लेखिका को दूसरे लड़कियों की भाँति भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं था। अत्यंत ही संयमी होकर जीवन जीने की पाबंदी उनपर थोप दी गई। उनके जीवन का सोलहवा साल भी एक असफल प्रेम की तरह ही था। लेखिका का मन इन पाबंदीयों के बीच रहने से विद्रोह कर उठा। अपनी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' में लिखा है -

"इस वर्ष जाना-पहचाना सब कुछ शरीर के वस्त्रों की तरह तंग हो जाता है, होंठ जिंदगी की प्यास से खुश्क हो जाते है, आकाश के तारे, जिन्हें सप्तर्षियों के आकार में देखकर टूट से प्रमाण करना होता था, पास जाकर छू लेने को जी करता है.....इर्द-गिर्द और दूर-पास की हवा में इतना मानहियाँ और इतने इंकार होते है और इतना विरोध कि साँसों में आग सुलग उठती है...."

(प्रीतम, 2018:17)

जीवन के ज़िस पड़ाव पर प्रेम का अनुभव होता है, उस समय लेखिका को अनेकों पाबंदियों से गुजरना पड़ा। सोलहवे वर्ष के आगमन पर लेखिका प्रेम की कविताएँ लिखना चाहती थी, पर पिता का आग्रह होता कि वह धार्मिक कविताएँ लिखे। एक आज्ञाकारी बेटी की तरह धार्मिक कविताएँ तो लिखती थी, पर मन के अंदर कहीं प्रेम की कविताएँ उमड़ती, वह उसे लिखती और दूसरे ही क्षण उसे फाड़ देती। बाद में जब अमृता प्रीतम ने प्रेम विषयक कविताएँ लिखी तो उनकी हर एक

कविता में जैसे सोलहवाँ साल मौजूद था। इसका उल्लेख करते हुए लेखिका कहती है-

"सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मूल्य काँच के बर्तनों की भाँति टूट गए थे और किरचें लोगों के पैरों में बिछी हुई थीं। ये किरचें मेरे पैरों में भी चुभीं थीं और मेरे माथे में भी। जिंदगी का मुँह देखने की भटकन में मैंने उसी तपिश के साथ कविताएँ लिखीं, जिस तपिश के साथ कोई सोलहवें वर्ष में अपने प्रिय का मुख देखने के लिए लिखता है,"

(प्रीतम, 2018:19)

3. आत्मनिर्णय और आत्मसम्मान पूर्वक जीवन यापन का स्वर

समाज का प्रत्येक व्यक्ति आत्मसम्मान पूर्वक जीवन जीने का अधिकारी है। साथ ही वह अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेने का हकदार भी है। लेकिन महिलाओं को आत्मनिर्णय के अधिकार से वंचित रखा जाता है। अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेना एक सुखद अनुभव है। जिसमें आत्मसम्मान का भाव भी निहित होता है। परंतु अक्सर देखा जाता है कि विवाह से पूर्व पिता, विवाह के पश्चात पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र सभी कार्यो का निर्णय लेते है। समाज में स्त्रियों को अबला कहकर उसे परनिर्भरशील बताया गया है। अमृता प्रीतम ने छोटी उम्र से आत्मनिर्णय पर बल दिया है। लेखिका का विवाह परिवार के निर्णय से हुआ था। चार वर्ष की आयु में घरवालों ने लेखिका की सगाई कर दी थी, बाद में उसी से विवाह भी हुआ। दो संतानों के जन्म के बाद लेखिका का पति से अलगाव हो गया। परंतु उनके पति का नाम प्रीतम हमेशा उनके साथ जुड़ा रहा। साहिर से उनका प्रेम और इमरोज के साथ रहना उनका अपना निर्णय था। लेखिका ने अपने जीवन में आए सभी पड़ावों का निर्वाह आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए किया।

'अक्षरों के साये' में नारी-मुक्ति का स्वर

आलोच्य आत्मकथा में लेखिका का रचनात्मक व्यक्तित्व और अधिक प्रखर रूप में सामने आता है। अमृता प्रीतम ने अपनी आत्मकथा 'अक्षरों के साये में' देश विभाजन के समय की उस त्रासदी की ओर संकेत किया है, जो स्त्री जीवन के लिए एक काला अध्याय था। जमीन के बँटवारे के दौरान जो दहसत फैली उसमें सबसे अधिक औरतें ही पीसी गई। लड़कियाँ अगवा कर ली जाती। हिंदुस्तान का बँटवारा

इतिहास की छाती का घाव बन गया। अनगिनत लड़कियों के सपने कत्ल कर दिये गए। उनका दैहिक शोषण कर उन्हें जबरन माँ बना दिया जाता था। उन लड़कियों का दर्द कोई नहीं जान सकता था, जिसके बदन की जवानी का शोषण किया जाता। कुछ लोग उन अगुवा हुई लड़कियों की तलाश कर ला रहे थे। जगह-जगह से टूटी बिलखती लड़कियों को लाया जा रहा था। लेखिका भी उनके पास बैठ उन बारदातों को सुनती थी। उन लड़कियों के जीवन में आई उस पीड़ा से लेखिका का हृदय व्यथीत हो जाता। आत्मकथाकार उस शिशु की पीड़ा से व्यथित होती जिसका पिता गुमशुदा था तथा माता के लिए अनचाहा। जिसका जन्म उसके माता के लिए पीड़ा बने, उसकी माता के मन में उसके लिए ममता न हो। लेखिका का हृदय कराह उठता। उन्होंने उस समय 'तवारीख' नाम की एक लंबी नज्म लिखी थीं, जिसका एक अंश, उस लड़की की आवाज है, जो हजारों लड़कियों की तरह कहीं खो गई थी। उस नज्म का उल्लेख करती हुई लेखिका कहती है-

"मैं नसीब जली ....पंजाब की बेटी

मैं बोल कर क्या कहूँगी

मेरी जबान तो काट दी गई

हाथ भी बंध गए, पैर भी बंधे

और माने पर किस्मत...

काले नाग-सी बैठी हुई...."

(प्रीतम, 2018:22)

देश के बँटवारे के समय स्त्रियों को जिन हालातों से गुजरना पड़ा, वह दिल दहलाने वाला था। लेखिका ने ऐसी ही घटना को लेकर एक 'पिंजर' नामक उपन्यास लिखा था। जिसमें मुख्य पात्र पुरो के माध्यम से उस समय की अगुवा होने वाली तथा दैहिक शोषण की शिकार बनी स्त्रियों की त्रासदी को वर्णित किया है।

इस आत्मकथा में अभिव्यक्त नारी मुक्ति के स्वर को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत रेखांकित किया जा सकता है-

1. रचनात्मक स्वतन्त्रता पर बल और नारी मुक्ति का स्वर

अमृता प्रीतम ने रचनात्मक स्वतन्त्रता को महत्व दिया है। एक साहित्यकार की रचनात्मक अभिव्यक्ति उसकी अपनी है। वह किसी के दबाव के बल पर नहीं

आती। लेखिका ने स्वीकारा है, कि जब से वह लिखने लगी थी, तब से किसी न किसी रूप में उनके खिलाफ विरोध भी होने लगा था। सन 1983 ई. में ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलने पर तो जैसे माहौल और भी जहरीला हो गया। उन्होंने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है-

"वैसे तो जब से लिखने लगी थी, मेरी मुखालफट दबे पाँव मेरे साथ चल रही थी, लेकिन जब 1983 में भारतीय ज्ञानपीठ का सम्मान मिला -मेरे गिर्द बहती हुई हवा जहरीली होने लगी -"

(प्रीतम, 2019:94)

एक बार लेखिका ने गुरु नानक की जन्म जयंती पर एक 'नौ सपने' नाम से एक कविता लिखी, जो गुरु नानक की माता तृप्ता के 'नौ सपने' पर आधारित था। इस कविता पर लेखिका की बड़ी कड़ी समालोचना की गई। अपने समकालीन साहित्यिक मित्रों के नाराजगी का सामना करना पड़ा। इसका उल्लेख करते हुए वह लिखती है -

"और अपने समकालीनों की नाराजगी से जब मैं आदालत में खड़ी थी, गालिब याद आए, पर समझ में नहीं आ रहा था कि मैं किसकी कर्जदार हूँ .....लगा -शायद तकदीर की कर्जदार हूँ...."

(प्रीतम, 2019:97)

इतने संघर्ष या विरोध के बावजूद भी लेखिका ने अपनी रचनात्मक स्वतंत्रता को नहीं छोड़ा। उन्होंने अपनी गहन अनुभूतियों को बिना किसी बाह्यडंबर के ही शब्दबद्ध किया है। वह लिखती है-

"स्याह बादल घिरने लगे- आए दिन कोई न कोई बिजली गिरने लगी। उन दिनों भी तड़प कर मेरे मुंह से निकला -"लेकिन मेरे भीतर से जब भी जगेंगे, देवता ही जगेंगे...."

(प्रीतम, 2019:96)

2. आत्मचेतन के सजग और नारी मुक्ति का स्वर

लेखिका की आत्मचेतन की भावना पूरे आत्मकथा में प्रतिबिम्बित होती है। चेतना के बीज बचपन से था। लेखिका के अनुसार चेतना अंत:मन की वह यात्रा है, जो शब्दों की पकड़ में नहीं आता। लेखिका का मानना है, कि उनके और उनके

चिंतन की यात्रा सिर्फ एक अक्षर में 'मैं' में है। उनकी यह यात्रा खतरनाक घाटियों तथा बीहड़ जंगलों से गुजरता हुआ बहुत मुश्किल था। इस यात्रा में कई बार रास्ता खोने की आशंका भी दिखाई दिया। लेकिन वह उदासीन और विचलित न हो कर उस यात्रा में आगे बढ़ती रही। वह लिखती है-

"यह 'मैं' से मैं तक की यात्रा है ....

गुलामी से मोहब्बत तक की यात्रा

जड़ से चेतन तक की यात्रा

अक्षर से अर्थ की यात्रा

और महदूद से लामदूद तक की यात्रा

यानी सीमित से असीमित तक की यात्रा ...."

(प्रीतम, 2019:107)

वह आगे लिखती है -

"मिट्टी के दिये को जो भी आग का शगुन डालता है, वह मैं हूँ -और आत्मा का आखिरी अक्षर जो भी खुदा की झोली में डाल देता है, वह मैं हूँ....."

(प्रीतम, 2019:139)

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि अमृता प्रीतम की दोनों आत्मकथाएँ स्त्री की उस यात्रा को दर्शाती है, जहाँ वह अपनी आवाज पाती है। पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देती है, और अपनी शर्तों पर जीवन जीने की कोशिश करती है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. प्रीतम अमृता, रसीदी टिकट, प्रथम संस्करण, दिल्ली: किताबघर प्रकाशन, 2018
2. वहीं
3. वहीं
4. वहीं

5. प्रीतम अमृता, अक्षरों के साये, प्रथम संस्करण, दिल्ली: राजपाल एंड संस प्रकाशन, 2019
6. वहीं
7. वहीं
8. वहीं
9. वहीं

सहायक ग्रन्थों की सूची

1. खन्ना, शांति. आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य. प्रथम संस्करण. दिल्ली: सन्मार्ग प्रकाशन, 1942.
2. चतुर्वेदी, पंकज. आत्मकथा की संस्कृति. प्रथम संस्करण. दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2003.
3. चौबे, डॉ झारखण्डे एवं अन्य. मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति. षष्ठम संस्करण. लखनऊ: डॉ. सुधाकर अदीब, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, 1979.
4. नीरू. प्रतिरोध का दस्तावेज़: महिला-आत्मकथाएँ. प्रथम संस्करण. दिल्ली: संजय प्रकाशन, 2009.
5. प्रीतम अमृता, रसीदी टिकट, प्रथम संस्करण, दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 2018
6. प्रीतम अमृता, अक्षरों के साये, प्रथम संस्करण, दिल्ली, राजपाल एंड संस प्रकाशन, 2019

Indian Knowledge System : Science, Humanities, Education & Society

ভাৰতীয় জ্ঞান পৰম্পৰা ঃ বিজ্ঞান, মানৱবিদ্যা, শিক্ষা আৰু সমাজ

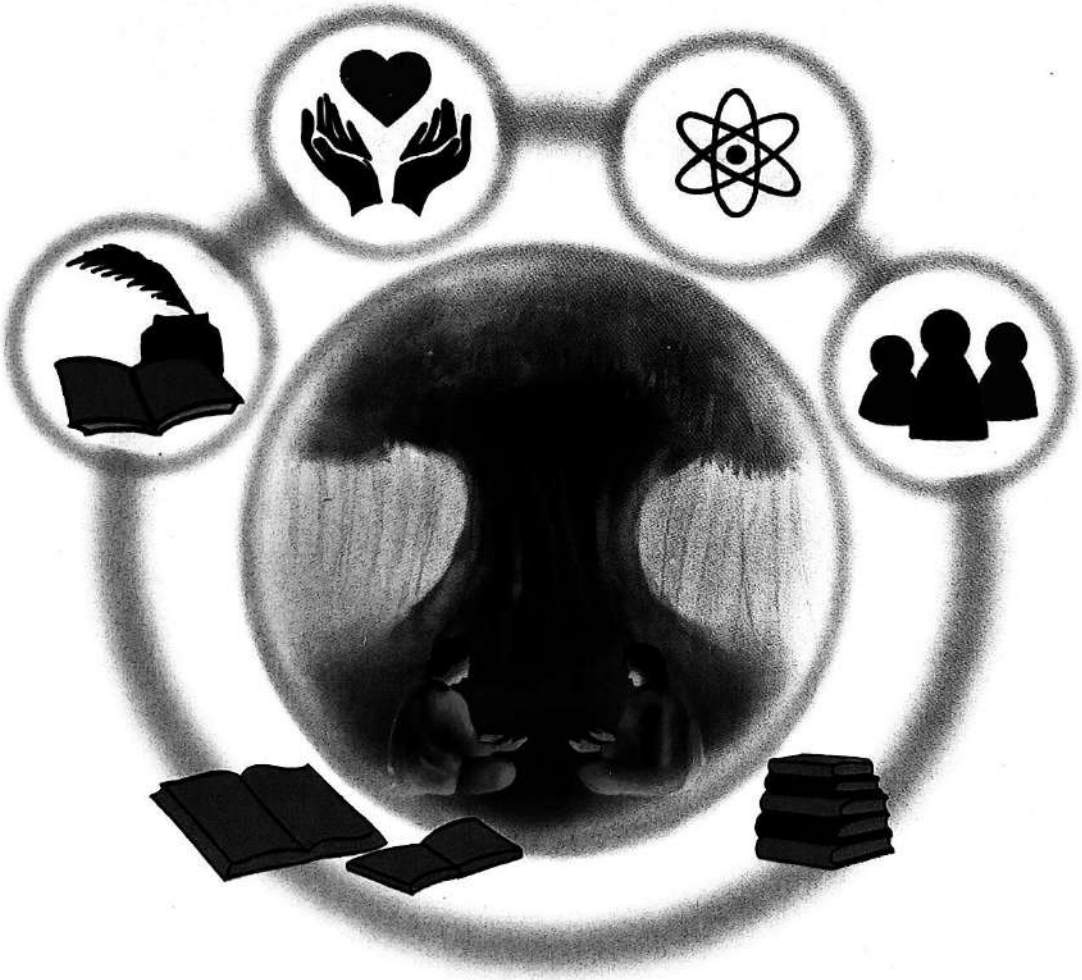

Editors :

Dr. Dalimi Devi

Dr. Kamal Prasad Gautam

Indian Knowledge System : Science, Humanities, Education & Society

ভাৰতীয় জ্ঞান পৰম্পৰা ঃ বিজ্ঞান, মানৱবিদ্যা, শিক্ষা আৰু সমাজ

Editors :
Dr. Dalimi Devi
Dr. Kamal Prasad Gautam

Central Library and Department of Sanskrit
Arya Vidyapeeth College (Autonomous)
Guwahati, Assam

Indian Knowledge System : Science, Humanities, Education & Society : *A peer-reviewed, multidisciplinary research volume comprising a collection of research papers and articles in the fields of Arts, Humanities, and Social Sciences. The book is published by Central Library and Department of Sanskrit, Arya Vidyapeeth College (Autonomous) on behalf of Aakar Prakash, Guwahati and is jointly edited by Dr. Dalimi Devi, Librarian and Dr. Kamal Prasad Gautam, Assistant Professor in the Department of Sanskrit, AVC (A), Guwahati, Assam.*

Indian Knowledge System : Science, Humanities, Education & Society

Editors : **Dr. Dalimi Devi,** *Librarian*
Arya Vidyapeeth College (A)
Dr. Kamal Prasad Gautam, *Assistant Professor*
Department of Sanskrit, Arya Vidyapeeth College (A)

Advisers :
Dr. Pradip Kr. Bhattacharyya, *Principal*
Arya Vidyapeeth College (Autonomous)
Prof. Sudeshna Bhattacharjya, *Professor*
Department of Sanskrit, Gauhati University
Dr. Ranjita Goswami, *HoD and Associate Professor*
Department of Sanskrit
Arya Vidyapeeth College (Autonomous)

Cover Design : Debanshi Sarma
Published By : Central Library and Department of Sanskrit
Arya Vidyapeeth College (Autonomous)

© Editors

First Edition : May, 2026
ISBN : 978-93-47876-47-9
Price : INR 500/-
Printed at : Kaziranga Printing House
Chandmari, Guwahati-21

❖ A Case Study of the *Digitizing* অসম
Dr. Nirmali Chakraborty 242

❖ Buddhist Morality as a Path of Knowledge : A Review with Reference to Indian Knowledge System
Debastuti Sarma
Bithika Deka
Mani Mala Medhi Das 251

❖ Human Values and Enduring Appeal in the Ramayana and the Mahabharata
Alok Dahal 263

❖ অসমৰ পৰম্পৰাগত লোক চিকিৎসাত জৈৱ উপাদানৰ ব্যৱহাৰ ঃ এক বিশ্লেষনাত্মক অধ্যয়ন
মিনু দাস 271

❖ অসমীয়া পৰম্পৰাগত খাদ্য সম্ভাৰ ঃ এক অলোচনা
ড° বিভা হাজৰিকা 281

❖ সত্রীয়া পৰম্পৰাৰ অধ্যয়ন ঃ নগাঁও জিলাৰ বিশেষ পৰিপ্রেক্ষিতত অতীত, বর্তমান আৰু ভৱিষ্যতৰ পর্যালোচনা
পার্থ প্রতিম দাস 288

❖ প্রাচীন অসমীয়া সাহিত্যত ভাৰতীয় জ্ঞান ব্যৱস্থাৰ ৰেঙনি ঃ এক বিশ্লেষনাত্মক আলোচনা
ড° দীপামণি বৰুৱা দাস
বিদ্যুৎজ্যোতি ভট্টাচার্য 297

❖ লোকসমাজৰ সৃষ্টিশীলতাৰ অন্যতম নিদর্শন পৰিবেশ্য কলা কামৰূপীয়া ঢুলীয়াৰ গীত
ড° ইৰাণী ঠাকুৰীয়া 304

❖ বৈদিক সাহিত্যত পৰিৱেশ সজাগতা সম্বন্ধীয় শিক্ষা- এক বিশ্লেষণ
ড° ৰঞ্জিতা গোস্বামী
কৰণজিৎ কাশ্যপ 320

❖ भारतीय ज्ञान परंपरा में भक्तिकालीन संत कवियों का योगदान
कसीरा जहाँ 328

भारतीय ज्ञान परंपरा में भक्तिकालीन संत कवियों का योगदान

कसीरा जहाँ
सहायक प्राध्यापक
आर. जी. बरुवा महाविद्यालय

शोध सारांश

भारतीय ज्ञान परम्परा का तात्पर्य भारतवर्ष के उस ज्ञान धारा से है, जिसमें ज्ञान, शिक्षा और विचारों का संकलन हुआ है। भारतीय ज्ञान परम्परा बहुत ही प्राचीन और समृद्ध है। इसकी शुरूआत वेदों से मानी जाती है। वेदों में ज्ञान, धर्म तथा भक्ति आदि के गहरे विचार प्रस्तुत हुए है। भारतीय ज्ञान परम्परा जीवन, समाज, अध्यात्म और अस्तित्व के अर्थ को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने की कोशिश की गई है। भारतीय ज्ञान परम्परा में भक्तिकालीन संत कवियों की अप्रतिम योगदान रहा है। इस कवियों ने भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रवाह को आगे बढ़ाया है। संत कवियों ने अपने साहित्य में ज्ञान को महत्व दिया है। लगभग सभी संत कवियों ने अपने सम्पूर्ण जीवन में भारत का कई बार भ्रमण कर अपने आदर्शों तथा उपदेशों के माध्यम से समाज के सभी वर्ग के लोगों को नई दिशा और ज्ञान प्रदान किया किया हैं। आडंबरहीन भक्ति को प्राधान्य दिया है, साथ ही अध्यात्म की भावना उनका प्राधान्य प्रतिपाद्य रहा है। प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय ज्ञान परंपरा में भक्तिकालीन संत कवियों की भूमिका को विस्तार से विश्लेषण किया जाएगा।

बीज शब्द - भारतीय, ज्ञान, परम्परा, भक्तिकाल, संत, कवि आदि।

भूमिका

भारतीय संस्कृति दुनिया की प्राचीनतम सभ्यताओं में एक है। ठीक उसी प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा भी बहुत ही प्राचीन साथ ही समृद्ध है। इसकी समृद्धि का प्रमाण लिखित रूप में पाए जाने वाले विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ- वेदों तथा तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशीला जैसे वृहत विश्वविद्यलयों से मिलता है। भारतीय ज्ञान परंपरा की नींव इस भारतभूमि के अनेक ऋषि, मनीषियों तथा विद्वानों ने अपने अनुभव तथा ज्ञान से तैयार किया हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के केंद्र में मानव कल्याण की कामना निहित है। 'सत्यम शिवम सुंदरम' के आदर्शो पर आधारित भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्देश्य मानव जीवन के हर पहलू को समृद्ध करना रहा है, चाहे वह आध्यात्मिक, सामाजिक, वैज्ञानिक या नैतिक ही क्यों न हो। वहीं संतों के विषय में कहा जाता है, कि ज्ञान का प्रयोग जब समाज की भलाई के होता है, तब संतत्व का प्रादुर्भाव होता है। संतों ने अपने ज्ञान को व्यक्तिगत मुक्ति की अपेक्षा सामाजिक हितों के लिए प्रयोग किया है। उन्होंने मानव कल्याण के लिए अपने सामर्थ्य का प्रयोग किया है। व्यक्ति और साहित्य दोनों ही स्तरों पर सामाजिक अनीतियों का विरोध किया है। भक्तिकालीन संतों ने न केवल लोकमानस में आध्यात्मिक जागरूकता बढ़ाई बल्कि सामाजिक और बौद्धिक क्रांति में भी महत्वपूर्ण भूमिका का पालन किया है।

विश्लेषण

'संत' शब्द संस्कृत की धातु 'सद' से बना है। इसका मूल अर्थ है 'सत्य को जानने वाला या जिसने अंतिम सत्य का अनुभव कर लिया हो। कुछ विद्वानों ने 'संत' का अर्थ ऐसा व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह को बताया है, जिसने सत्यरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संतों के विषय में कहा है-

> **''डॉ.पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संत का संबंध शांत से माना है और इसका अर्थ उन्होंने किया है- निवृति मार्गी या वैरागी।''।**
>
> (शर्मा, 1989, 119)

हिन्दी के विद्वान परशुराम ने इस विषय में कहा है -

> **''संत शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने सैट**

रूपी परम तत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तदरूप हो गया हो, जो संत स्वरूप नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका हो अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखंड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया हो वहीं संत है।''[2] (शर्मा, 1989, 119)

12वीं शताब्दी से ही संत परंपरा का प्रारम्भ माना जाता है। उस समय संतों ने अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से प्रकट करना प्रारम्भ किया। भक्तिकालीन संतों का समय 15वीं शताब्दी के उतरार्द्ध से माना जाता है। भक्तिकालीन साहित्य को मुख्यत: चार भागों में बाँटा गया है। वे है- ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि ही संत कवि कहलाए जाते है। कबीरदास, रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, दादूदयाल, सुंदरदास, मलूकदास, अक्षर अनन्य आदि प्रमुख भक्तिकालीन संत कवि है। ज्ञानाश्रयी शाखा के अंतर्गत होने के कारण ज्ञान आहरण तथा प्रसार करना संतों का मुख्य ध्येय था। भक्तिकालीन संत कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में प्रेम, करुणा और समानता का संदेश दिया है। अधिकांश संतों के गुरु रामानंद थे। वे द्रविड़ देश में उपजी भक्ति को उत्तर भारत में लाने वाले प्रथम थे। स्वतंत्र चिंतन शक्ति वाले रामानंद ने अनुशासन संबंधी विषय पर अपने गुरु से मत-भेद हो जाने के कारण मठ त्यागकर उत्तर भारत की ओर चले आए थे। मठ त्यागना आसान कार्य नहीं था, क्योंकि उस समय मठ बहुत ही संपदशाली स्थान हुआ करती थी। आचार्य रामानन्द के लिए वर्ण व्यवस्था राह का रोड़ा कभी नहीं बना। उन्होंने भक्ति को प्राधान्य देकर सभी वर्ग के शिष्य को अपना लिया। रामानुज हरिवरदास ने अपनी हरिभक्ति-प्रकाशिका में लिखा है-

''रामानन्द ने देखा कि भगवान के शरणागत होकर भक्ति के पथ में आ गया, उसके लिए वर्णाश्रम का बंधन व्यर्थ है, इसलिए भगवदभक्ति को खान-पान की झंझट में नहीं पड़ना चाहिए। यदि ऋषियों के नाम पर गोत्र और परिवार बन सकते है, तो ऋषियों के भी पूजित परमेश्वर के नाम पर सबका परिचय क्यों नहीं दिया जा सकता ? इस प्रकार सभी भाई-

भाई हैं, सभी एक जाति के है। श्रेष्ठता भक्ति से होती है जन्म से नहीं।'' (द्विवेदी, 1998, 55)

आचार्य रामानन्द संस्कृत के विद्वान होते हुए भी देशभाषा या लोकभाषा में कविता लिखा। सभी वर्गो में (ब्राह्मण से लेकर चांडाल) तक में राम-नाम का उपदेश दिया। आचार्य रामानन्द के विचारों तथा उनके दर्शन से उनके शिष्य भी प्रभावित हुए। उनके शिष्य भक्तिकालीन संत के कई प्रमुख कवि थे। भक्तिकालीन संत कवि कबीरदास, रैदास, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, आशानन्द, सुरसुरानंद आदि कवियों ने अपने गुरु के सामाजिक समन्वय, धार्मिक समन्वय तथा भक्तिमूलक दर्शन का प्रचार-प्रसार किया जो भारतीय ज्ञान परंपरा की मूल नींव थी। संतों ने आध्यात्मिक, सामाजिक, भाषाई और सांस्कृतिक स्तर पर समाज को नई दिशा दी।

संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान पंडित भागवत शास्त्री जी ने भारतीय ज्ञान परंपरा के संबंध में कहा है- **भारतीय ज्ञान परंपरा-सनातन गंगा-प्रवाह** यानी भारतीय ज्ञान-परंपरा गंगा का एक बारहमासी प्रवाह है। भारतीय संस्कृति में गंगा को पवित्रता तथा मुक्ति का प्रतीक माना जाता है। लोकविश्वास के अनुसार गंगा स्वर्ग से अवतरित होकर लाखों-करोड़ों लोगों को इस योगभूमि अर्थात भारत में मोक्ष सुनिश्चित करती है। भारतीय संस्कृति में ज्ञान ही सर्वोच्य है। ज्ञान के बिना कुछ भी शुद्ध या सही नहीं है। भक्तिकालों संतों ने भी ज्ञान को सर्वोच्य माना है। इसलिए उन्हें ज्ञानाश्रयी शाखा के अंतर्गत माना जाता है। संतो ने ज्ञान अपने स्वयं के सच्चे आत्म को जानने के लिए किया है। भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रवाह को आगे बढ़ाने में भक्तिकालीन संतों की भूमिका को निम्न बिन्दुओं में रेखांकित किया गया है-

1. आध्यात्मिक चेतना का प्रसार

भक्तिकालीन संत कवियों ने आध्यात्मिक चेतना का प्रसार किया है। उनके काव्यों में आध्यात्मिक विषयों की अभिव्यक्ति हुई है। परम तत्व को महान माना है। संतों ने आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकारा है। उनके अनुसार आत्मा-परमात्मा एक ही पृष्ट के दो पहलू है। मानव जीवन का समयकाल परमात्मा से विछुड़न की बेला है। मृत्यु के बाद वह पुनः प रमात्मा में विलीन हो जाएगा। कबीर कहते है-

''जल में कुम्भ है, कुम्भ में जल
बाहर भीतर पानी

फूटा कुम्भ जल जल ही सामना
यह तथ्य कथहु ज्ञानी।''[4] (स्नातक.विजयेन्द्र, 1965, 82)

वेदान्त शास्त्र के अनुसार मनुष्य का सबसे बड़ा लक्ष्य या पुरुषार्थ मोक्ष है- मोक्ष यानि मुक्ति। यह संसार दु:खरूप है और मोक्ष ब्रह्म-स्वरूप ही है। संतों ने सही ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताया है। इस सही ज्ञान को 'विद्या' कहते है। विद्या का एकमात्र विषय है 'आत्मा' या 'ब्रह्म' का ज्ञान। यहीं कारण है कि इस विद्या को 'आत्मविद्या', 'आत्मविज्ञान', 'ब्रह्मविद्या' और 'ब्रह्मज्ञान' कहा जाता हैं। ब्रह्म की विद्या को दो भागों में बाँटा गया है। पहला है- परा विद्या और दूसरा है- अपरा विद्या। पहली विद्या का विषय परम ब्रह्म है, दूसरी का अपरब्रहम। परा विद्या को ऊँची जानकारी कहते है। जिसका एकमात्र फल मोक्ष होता है। अपरा विद्या का लक्ष्य ब्रहमोपासना है। इससे कर्म-समृद्धि होती है। सुख और कल्याण प्राप्त होते हैं और धीरे-धीरे मुक्ति भी मिल सकती है। संतों ने अपरा विद्या पर बल दिया है।

2. सामाजिक सुधार में योगदान

संत सच्चे अर्थो में सामाज सुधारक थे। उन्होंने सामाजिक विषमता को अपनी काव्य के माध्यम से सुधार करने का प्रयास किया है। भक्तिकालीन संतों ने सामाजिक एकरूपता की बात कहीं है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसका उल्लेख करते हुए इसप्रकार वर्णन मिलता है-

''संतकवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था, उनकी रचनाओं में जन-जन के हित और उनके उद्बोधन की भावना सन्निहित है।''[5] (नगेन्द्र डॉ. 2012, 116)

उन्होंने समाज की व्यवस्था के लिए व्यक्ति के पवित्र जीवन को अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार समाज में एकरूपता तभी निश्चित है, जब जाति, वर्ण तथा वर्ग भेद न्यून से न्यून हो। भक्तिकालीन संतों ने जातिगत भेद-भाव का प्रबल विरोध किया है। धार्मिक भेदभाव और बाह्य आडंबर- तीर्थ या हज, वेद पाठ, छुआछूत, रोजा-नमाज, हिन्दू-मुसलमान, मंदिर-मस्जिद, ब्राह्मण-शूद्र, शिया-सुन्नी आदि संघर्षो का कठोर विरोध किया है। धर्म और कर्म की श्रेष्ठता या निम्नता के आधार पर किसी व्यक्ति की उच्चता या नीचता के आकलन की प्रवृति का भी भक्तिकालीन संतों ने घोर विरोध किया है। भक्तिकालीन अधिकांश संत निम्न वर्ण के थे, अत: सामाजिक के हृदय में

निम्न वर्ग के प्रति व्याप्त अश्पृशता की भावना को भोगा था। उसकी पीड़ा को महसूस किया था। अतः उन्होंने मानवधर्म का प्रचार किया। कबीर ने कहा है-

''साई के सब जीव है''[6] (शर्मा, 1989, 131)

कबीर ने सभी मानव को ईश्वर का संतान माना है। वहीं संत रैदास ने कहा है-

''जन्म जात के छाड़ि करि, करनी जात पर ध्यान।
इहयों वेद का धरम है, करै रैदास बखान।''[7] (सिंह, 2015,115)

संत रैदास ने सामाजिक एकता का संदेश दिया है। उन्होंने सामाजिक छुआछूत तथा 'वर्ण व्यवस्था' का विरोध कर सामाजिक स्वास्थ के लिए अचूक औषधि तैयार की। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई थी और एक एसी समाज की कल्पना की थीं जहाँ पर ये सब विषमताएँ न हों-

''ऐसा चाहौं राज मैं, जहाँ मिलै सबन को अन्न।
छोड़-बड़ौ सब सम बसै, 'रैदास' रहैं प्रसन्न।''[8] (सिंह, 2015, आवरण)

3. लोकभाषाओं के विकाश में योगदान

भक्तिकालीन संत कवियों ने शिष्ट भाषा की अपेक्षा लोकभाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। भक्तिकालीन संत कवि प्रायः अशिक्षित थे। जिसके कारण वे साहित्यिक भाषा के प्रयोग में अक्षम थे। प्रायः सभी संत अपने मतों तथा विचारों के प्रचार के लिए देश के विभिन्न स्थलों में घूमते रहते थे। अतः संतों की भाषा में देश के विभिन्न स्थानों की लोकभाषाओं की बोलियों का सम्मिश्रण पाया जाता है। अतः उनकी भाषा मिश्रित हो गई। भक्तिकालीन संतों की भाषा आडंबरहीन और अलंकारहीन थी। उन्होंने भाषा पर अलंकारों को लादने का प्रयास नहीं किया। उनकी भाषा जनभाषा या लोकभाषा थी।

4. नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना

भारतीय ज्ञान परंपरा में मानवीय मूल्यों की व्यापकता सहजता और वैश्विकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में मानवीय मूल्यों पर महत्व दिया जाता है। भारतवर्ष में 'वासुदेव कुटुंबकम' की विचारधारा को अपनाते हुए धरती को एक परिवार माना है। यह देश अपने सभ्यता तथा संस्कृति के लिए प्रसिद्ध रहा

है। अपनी सभ्यता संस्कृति के प्रति यह भाव प्रत्येक भारतीय को विरासत के रूप में मिला है। प्राचीनकाल से ही हमारी ज्ञान परंपरा मनसा, वाचा, कर्मणा पर आधारित रही है। अत: यहाँ की ज्ञान परंपरा नैतिकता तथा मानवीय मूल्यों के विकाश पर ध्यान केन्द्रित करती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के भक्तिकालीन धार्मिक परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित करने पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि उस समय जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच की भावना का काफी प्रबल थी। संतों का मूल्य लक्ष्य मानव को एक ऐसे विश्वव्यापी धर्म के सूत्रों में निबद्ध करना, जहां जाति, वर्ग और वर्ण संबंधी भेद न हों। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसका वर्णन इसप्रकर किया गया है-

''संतसंप्रदाय विश्वसंप्रदाय है और उसका धर्म विश्वधर्म है। इस विश्वधर्म का मूलाधार है- हृदय की पवित्रता। पवित्रता-समस्त स्वाभाविक और सत्विकता आचरण ने ही यहां धर्म का बृहत रूप ग्रहण किया। समस्त वासनाओं, इच्छाओं एवं द्वेषों से रहित हृदय की नि:सीम सीमाओं में विशाल धर्म का प्रवेश और समावेश संभव है।''[9] (नगेन्द्र, 2012, 115)

संतों का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में संवेदनशील था। वे स्वच्छ तथा उदार मानसिकता वाले व्यक्ति थे। उन्होंने अपने समय के मानव समाज को परिष्कृत बनाने की चेष्टा की है। उनकी रचनाओं में मानव की क्षुद्रता, उसकी सीमा, उसकी मानसीक संकीर्णता, स्वार्थपरता, असत्यप्रियता आदि का विवेचन तथा विश्लेषण किया है। संत अपने समय के समाज के सच्चे प्रहरी रहे है। उन्होंने अपने रचनाओं के माध्यम से सामाजिक असंगतियों, धार्मिक विडम्बनाओं आदि का निदान दिया है। संतों की वाणी जनमानस के लिए पीयूष वाणी थीं, जो उनके संताप को दूर करती थीं।

इसप्रकर यह कहा जा सकता है, कि संतों ने नैतिक और मानवीय मूल्यों की स्थापना किया है।

5. गुरु-शिष्य परंपरा का संरक्षण

भक्तिकालीन संतों ने गुरु-शिष्य की परंपरा का संरक्षण किया है। उन्होंने गुरु को भगवान से भी अधिक महत्व दिया है। कबीर के शब्दों में-

''गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लांगू पाइ।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताइ।''[10]

(शर्मा, 1989, 125)

वहीं संत शिरोमणि रैदास लिखते है-

''गुरु ज्ञान दीपक दिया, बाती दइ जलाय।
'रैदास' हरि भगति कारनै, जनम मरन विलमाय''[11]

(सिंह, 2015, 128)

संत भीषण लिखते है-

''हरी का नामु अमृत जलु निरमल इहु अउखधु जगि सारु।
गुरु परसादि कहै जनु भिखनु पावउ मोख दुवारा॥''[12]

(नगेन्द्र, 2012, 131)

उन्होंने गुरु को ज्ञान रूपी दीप जलाने वाला व्यक्ति माना है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि भारतीय ज्ञान परंपरा एक विशाल और समृद्ध विरासत है, जो भारतीय संस्कृति, विचारधारा और ज्ञान के स्रोत के रूप में प्रमुखता रखती है। यह परंपरा भारतीय समाज के विविध पहलुओं और मूल्यों के प्रति हमें अवगत कराती है, जो हमारे जीवन और समाज को शांति संबल और समृद्धि की दिशा में अग्रसर बनाती है। भारतीय ज्ञान परंपरा की नीति को समाज के प्रत्येक जन तक पहुँचने में भक्तिकालीन संतों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आडंबरहीन ज्ञान से तथा भक्ति से लोगों को प्रत्यक्ष करा कर समाज में समता स्थापित किया है। समाज को जोड़ा है। लोगों में मानवीय मूल्यबोध जगाने में सफल हुए है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. शर्मा, शिवकुमार, हिन्दी साहित्य की युग और प्रवृति, ग्यारहवा संस्करण-1989, अशोक प्रकाशन, दिल्ली

2. शर्मा, शिवकुमार, हिन्दी साहित्य की युग और प्रवृति, ग्यारहवा संस्करण-1989, अशोक प्रकाशन, पृष्ठ-दिल्ली

3. द्विवेदी, हजारिप्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, तीसरा संस्करण-1998, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

4. स्नातक, विजयेन्द्र(सं), कबीर, पहला संस्करण-1965, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

5. शर्मा, शिवकुमार, हिन्दी साहित्य की युग और प्रवृति, ग्यारहवा संस्करण-1989, अशोक प्रकाशन, दिल्ली

6. सिंह, डॉ. एन, संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, प्रथम संस्करण-2015, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

7. डॉ. नगेन्द्र तथा हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, बयालीसवां संस्करण- 2012, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

8. सिंह, डॉ. एन, संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, प्रथम संस्करण-2015, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

9. डॉ. नगेन्द्र तथा अन्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास, बयालीसवाँ संस्करण-2012, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा

10. शर्मा, शिवकुमार, हिन्दी साहित्य की युग और प्रवृति, ग्यारहवा संस्करण-1989, अशोक प्रकाशन, दिल्ली

11. सिंह, डॉ. एन, संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, प्रथम संस्करण-2015, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

12. डॉ. नगेन्द्र तथा अन्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास, बयालीसवाँ संस्करण-2012, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा

सहायक ग्रन्थों की सूची

1. शिंदे डॉ. गणेशचंद्र तथा अन्य (सं), भारतीय ज्ञान प्रणाली, प्रथम संस्करण, 2025, ए. आर. पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली

2. बघेल, संजय सिंह, हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, प्रथम संस्करण, 2020, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

3. शुक्ल आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास,

4. द्विवेदी हजारी प्रसाद, कबीर, नौवा संस्करण, 2002, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली

5. चतुर्वेदी परशुराम, संत काव्य-धारा, चतुर्थ संस्करण, 1981, किताब महल, इलाहाबाद

6. सिंह, डॉ. एन, संत शिरोमणि रैदास वाणी और विचार, प्रथम संस्करण, 2015, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

7. स्नातक, विजयेन्द्र(सं), कबीर, पहला संस्करण-1965, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

8. डॉ. नगेन्द्र तथा हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, बयालीसवां संस्करण, 2012, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

RNI NO. ASSBI/2009/31008
ISSN [illegible]-4945
Peer Reviewed Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : ७ अंक : ३



RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

www.arpsguwahati.com

वर्ष : 76 **अंक : 3, 4** **जून, जुलाई, 2026**

परामर्श मंडल

भारतभूषण महंत (असम) • **प्रो. आर. एस. सर्राजु** (तेलंगाना) • **प्रो. किरण हाजरिका** (पंजाब)
• **प्रो. प्रदीप के शर्मा** (सिक्किम) • **प्रो. एच. एन. वाघेला** (गुजरात) • **डॉ. रीतामणि वैश्य** (असम)

संपादक मंडल

प्रो. देवाशीष महापात्र (तेजपुर) • **डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन** (गुवाहाटी) • **प्रो. दिलीप कुमार मेधी** (गुवाहाटी)
• **डॉ. अनुशब्द** (तेजपुर) • **डॉ. कुसुम कुंज मालाकार** (गुवाहाटी) • **डॉ. जुरी दत्त** (तेजपुर)
• **डॉ. अंबेश्वर गोगोई** (गुवाहाटी) • **डॉ. प्रांजल शर्मा वशिष्ठ** (गुवाहाटी) • **डॉ. स्वप्नाली दास** (गुवाहाटी)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

संपादक

प्रो. मोहन

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32

फोन : 9101541395, 9101541380

ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा. लिमिटेड, इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

© **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी विभाग		
	संपादकीय		*5*
1.	खड़ीबोली का साहित्यिक विकास : बीज से वृक्ष बना	✍ डॉ. मुकेश कुमार	7
2.	कविता के आईने में झाँकता इतिहास	✍ डॉ. अखिलेश गुप्ता	21
3.	रामचरितमानस में रस परिकल्पना	✍ डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा	27
4.	खाद्य सुरक्षा एवं कुपोषण की समस्या : समाजशास्त्रीय विश्लेषण	✍ डॉ. विनय कुमार सिंह पटेल	34
5.	लोकगीत 'जिकिर' का समाजशास्त्रीय अध्ययन	✍ डॉ कसीरा जहाँ	42
6.	भारत-विभाजन की विभीषिका और राष्ट्र-रक्षा का बोध	✍ डॉ. राकेश कुमार सिंह	47
7.	हिंदी कथा साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद : शेखर जोशी, भैरव प्रसाद गुप्त एवं मार्कंडेय के संदर्भ में एक साहित्य समीक्षा	✍ सुमीत गुप्ता ✍ डॉ. रिचा वर्मा	52
8.	काशी : ऐतिहासिक परिचय और सांस्कृतिक स्वरूप	✍ डॉ. राजन सिंह	60
9.	जूठन : एक यात्रा स्व से समाज तक	✍ शिखा शाक्य ✍ प्रो. शगुन अग्रवाल	68
10.	भक्तिकाल की स्त्री कविता	✍ प्रो. गौरी त्रिपाठी	73
11.	'संस्कार' में धर्म, नैतिकता और मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता : यू. आर. अनंतमूर्ति के उपन्यास का आलोचनात्मक पुनर्पाठ	✍ डॉ. सुबोध ठाकुर	79
12.	भारत के विभिन्न राज्यों में 'शिव उपासना' की परंपराएँ	✍ डॉ. ज्योत्स्ना राठौड़	84
13.	कश्मीरी रचनाकार मोहम्मद जमान आजुर्दा के निबंध : परिदृश्य एवं परिप्रेक्ष्य	✍ डॉ. वाइखोम चींखैडानबा	89
14.	निर्मला पुतुल का काव्य : भूमंडलीकरण, आदिवासी विमर्श और प्रतिरोध की चेतना	✍ डॉ. करबी तालुकदार	94
15.	'मलबे का मालिक' कहानी में निहित विभाजन का मार्मिक चित्रण	✍ डॉ. सहिदुल इस्लाम	103
16.	संत कबीरदास के काव्य में लोकधर्म और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इनकी प्रासंगिकता	✍ डॉ. मरमी राय बरुवा	107
17.	'संस्कृति-पथ के पथिक' यात्रा-संस्मरण में विकास लांबा का उदात्त व्यक्तित्व	✍ अनीता रानी ✍ डॉ. प्रवीण देशमुख	115
18.	संजीव की कहानियों में नक्सलवादी यथार्थ और सत्ता-विमर्श	✍ रीना कुमारी राय	122
19.	युद्ध के दौर में नारी अस्मिता (विशेष संदर्भ : महादेवी वर्मा का 'युद्ध और नारी' निबंध)	✍ अभिषेक सिंह	128
20.	लीलाधर जगूड़ी के काव्य में शिल्प-विधान	✍ गणेश प्रसाद	132
21.	आदिवासी समुदाय 'उरांव' की प्रकृति से साहचर्य की संस्कृति	✍ सिद्धांत यादव	136

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

लोक गीत 'जिकिर' का समाजशास्त्रीय अध्ययन



डॉ. कसीरा जहाँ

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग
आर.जी.बरुवा महाविद्यालय
फटाशील, आमबाड़ी- 781025
✆ 9707197734
✉ rubijahan81@gmail.com

शोध सार :

पूर्वोत्तर के आठों राज्यों में असम एक प्रमुख राज्य है। यह विभिन्न जाति-उपजाति के लोगों का संगम स्थल भी रहा है। यह राज्य प्राकृतिक संपदा के साथ ही लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति की दृष्टि से धनी है। यहाँ तिवा, राभा, मिसिंग, बोड़ो, कछारी, गारो आदि उपजातियों के लोक गीत, लोक कथाएँ, लोक विश्वास आदि देखने को मिलते हैं। असम की पवित्र भूमि शंकर-अजान (शंकरदेव और अजान फकीर) की मानी जाती है। शंकरदेव और अजान फकीर के समन्वयवादी विचारों ने सामाजिक एकता की मजबूती में बड़ी भूमिका निभाई है।

'जिकिर' असम की भूमि में रहने वाले इस्लाम धर्मावलंबियों का प्रचलित लोक गीत है। यह लगभग चार सौ सालों से मौखिक रूप से प्रचलित है। जिकिरों में आध्यात्मिक तत्वों के साथ व्यक्ति तथा समाज जीवन के लिए अति प्रयोजनीय तथा महत्वपूर्ण बातें अंतर्निहित होती हैं। इस शोध पत्र में जिकिरों का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :

लोक साहित्य, लोक गीत, जिकिर, समाज, समाजशास्त्रीय अध्ययन आदि।

प्रस्तावना :

'जिकिर' शब्द अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है- स्मरण करना। इसे इस्लामधर्मी लोगों का भक्तिमूलक गीत भी कहा जा सकता है। इन लोक गीतों की तुलना हिंदू धर्म के भक्तिमूलक गीतों या स्तुति गीतों से की जा सकती है। जिकिर के प्रथम रचयिता अजान पीर या अजान फकीर को माना जाता है। इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है-

''शाह मिलाने एइ जिकिर करिले किताब कोराणत पाइ'' [1]

(अर्थात शाह मिलान ने कुरान का सहारा लेकर जिकिर की रचना की।)

उनका वास्तविक नाम हजरत शाह मीरान है। अजान पीर या फकीर नाम पड़ने के पीछे कई कारण हैं। कुछ लोगों का मानना है कि असम आगमन के बाद असम के लोगों को उन्होंने अजान देकर नमाज पढ़ना सिखाया था, जिसके कारण उनका नाम अजान पीर या अजान फकीर पड़ा। वहीं कुछ लोगों के अनुसार, अनजान या अजनबी देश से आने के कारण उनका नाम अजान फकीर पड़ा। वे ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया के वे शिष्य थे। अजान फकीर बगदाद से सन 1634 ई. में असम आए। उनकी मातृभाषा अरबी थी, परंतु यहाँ आकार उन्होंने असमिया को ही मातृभाषा के रूप में स्वीकारा। असमिया भाषा में ही उन्होंने जिकिर लिखा। वे एक ऐसे व्यक्ति

थे, जिनका जीवन दर्शन साधना और जनहित से जुड़ा था। उन्होंने धर्म की महान वाणियों को जनसाधारण के बीच प्रसारित किया, जिससे एक समतामूलक समाज की स्थापना हो सके। उन्होंने बहुत वर्षों तक यायावरी जीवन बिताया। उन्हें कई चुनौतियों तथा संघर्षों से भी गुजरना पड़ा। उनके असम आगमन के समय आहोम शासक स्वर्गदेव गदाधर सिंह का शासन काल था, जिनके अंगरक्षक थे रूपाई दा धरा। रूपाई दा धरा बड़े अहंकारी व्यक्ति थे। वे अजान फकीर की जनप्रियता देखकर ईर्ष्या से जल उठे और उनके विरुद्ध राजा से शिकायत की। लेकिन राजा स्वर्गदेव को सारी सच्चाई का पता चलते ही वे अजान फकीर से क्षमा माँगते हैं, साथ ही ब्रह्मपुत्र और दिखौ नदी के संगम स्थल पर एक घर और साथ में तीस बीघा जमीन दान करते हैं। अजान पीर सामाजिक समता स्थापित करने के लिए एक उच्च कुलीन आहोम स्त्री से विवाह करते हैं। बाद में वे असम के शिवसागर जिले के गड़गाँव नामक स्थान में स्थायी रूप से बस गए। जिस समय अजान पीर असम आए थे, उस समय असमिया लोगों को इस्लाम धर्म संबंधी अवधारणा स्पष्ट नहीं थी। अधिकांश मुसलमान या तो युद्ध में बंदी होकर यहाँ रह गए थे या धर्म परिवर्तन कर इस्लाम धर्म को ग्रहण किया था। अत: वे नमाज, रोजा या अन्य रीति-नियमों को नहीं जानते थे। अजान फकीर ने असमिया मुसलमानों को रोजा-नमाज आदि से परिचित कराया। सूफी अजान फकीर असम में आने के बाद नव-वैष्णव धर्म से भी प्रभावित हुए। अजान फकीर के गीत सार्वजनीन थे, अत: हिंदू-मुसलमान सभी उनके भक्त थे। अजान फकीर के बाद जिकिर लेखन की परंपरा को आगे बढ़ाया असमिया धार्मिक मुसलमान गुरुओं ने, जिनमें चांदखाँ, शेख फरीद, मुनीया देवान, बान्दर फकीर, गोलाम हुसैन, हरिदास कुमार आदि हैं। कुछ जिकिर ऐसे भी हैं, जिनके रचयिताओं के नाम अज्ञात हैं। जिकिर लगभग चार सौ वर्षों से मौखिक रूप से प्रचलन में हैं। मौखिक रूप में होने के कारण ये यत्र-तत्र फैले हुए हैं। कुछ जिकिर मूल गायकों की मृत्यु हो जाने के कारण विलुप्त हो गए और कुछ गायकों के उच्चारण में अंतर होने के कारण विकृत हो गए हैं। इन जिकिरों को संगृहीत करने के क्षेत्र में स्वर्गीय क्षेत्रधर बरगोहाईं के साथ ही मोहम्मद मूहीवुल्ला, मौलवी सैयद वशिद अहमद की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जिकिरों को लिखित रूप में संगृहीत करने का पहला प्रयास जोरहाट के स्वर्गीय मौलवी सैयद अब्दुल हक ने किया था।

इन जिकिरों के माध्यम से शरीयत के सिद्धांतों का प्रचार कर समाज में एक प्रकार समन्वय का संदेश दिया गया है। जिकिर को सैयद अब्दुल मालिक ने दो भागों में बाँटा है, जिसका उल्लेख करते हुए डॉ. भूपेंद्र राय चौधुरी कहते हैं- *''असमिया जिकिर गीत के प्रसंग में सैयद अब्दुल मालिक ने कहा है कि जिकिर को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग में फर्ज, सुल्तान, वाजिब आदि कर्म के पालन करने की शिक्षा दी गई है, जो आम जनता के लिए सहजबोध्य हैं तथा इनकी भाषा भी व्यवहार की हैं। द्वितीय भाग में मारिफत, हकीकत आदि सूफी दर्शन की अध्यात्मिक साधना विषयक कथन हैं।''*[2]

जिकिर के प्रथम रचयिता अजान फकीर नव-वैष्णव धर्म के प्रवर्तक श्रीमंत शंकरदेव के समसामयिक थे। अत: जिस समय असम में श्रीमंत शंकरदेव का एकशरणिया धर्म प्रसारित हो रहा था, उसी समय जिकिर की भी रचना हो रही थी। अजान फकीर श्रीमंत शंकरदेव के विचारधारा से काफी प्रभावित थे। श्रीमंत शंकरदेव द्वारा प्रतिष्ठित नव-वैष्णव धर्म में जिस प्रकार की उदारवादी दृष्टिकोण पाया जाता है, वही उदारवादी दृष्टिकोण जिकिर में भी पाया जाता है। असमिया समाज में अजान फकीर के महत्वपूर्ण अवदान को गीतकार तथा गायक भूपेन हजारिका ने इन शब्दों में कहा है- *''आमार हाजोत मक्कार दरे, पोवा मक्कार साजिछे, काषते माधवरे मंदिरों बिराज करिछे, शंकरे इस्लामको सम्मान जाचिछे, आजाने जिकिर रचि, भाषा चहकी करिछे।''*[3] (लोक साहित्य एवं संस्कृति, पृष्ठ-18)

मूल आलेख :

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य में वही वर्णित होता है, जो समाज में प्रचलित होता है। लोक साहित्य के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है। जिकिर असमिया लोक संस्कृति तथा समाज को जानने का एक सशक्त माध्यम है। असम सदैव से विभिन्न जाति तथा

जनजाति के लोगों का समन्वय स्थल रहा है, जिनके अपने उत्सव त्योहार, रीति-नीति तथा लोक विश्वास हैं। यहाँ रहने वाले सभी जाति-जनजातियों के रीति-रिवाज, उत्सव-त्योहार, विश्वास तथा मान्यताओं में असमिया संस्कृति तथा समाज का निदर्शन होता है। यहाँ आहोम, कोच, कलिता, सुतिया, ब्राह्मण, नाथ, कैवर्त, बोड़ो, मिशिंग, कार्बी, सोनोवाल, मरान, मटक, तिवा, देउरी आदि जातियाँ-उपजातियाँ पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त सिख तथा इस्लाम धर्मावलंबी लोग भी यहाँ के निवासी हैं और इन सभी की संस्कृतियों में असमिया समाज का निदर्शन देखा जाता है।

1. सामाजिक समन्वय :

असमिया समाज में विभिन्न जातियों के बीच आपसी प्रेम देखा जाता है। सांप्रदायिकता कभी भी सामाजिक एकता के मार्ग में बाधक नहीं बना है। जिकिरों में इसी सामाजिक एकता की भावना देखी जा सकती है। उदाहरणस्वरूप-

''हिन्दू कि मूछलमान ऐके आल्लार फरमान,
मोर मनत एकेटि भाव।
मोर मनत भेद भाव नाई अ' अल्ला।
मोर मनत भेद भाव नाई अ' अल्ला।''[4]

(भावार्थ- हिंदू हो या मुसलमान दोनों एक हैं। यह ईश्वर का फरमान है। मेरे मन में कोई भेदभाव नहीं है।)

इस जिकिर के जरिए असम भूमि में रहने वाले हिंदू तथा मुसलमानों के बीच की ऐक्य भावना, आपसी प्रेम, भातृत्व बोध आदि देखा जाता है। अजान फकीर द्वारा विरचित जिकिरों में मक्का, मदीना या अजमेर आदि पवित्र स्थानों का ही उल्लेख नहीं मिलता, बल्कि काशी, गया, गोकुल, मथुरा जैसे तीर्थ स्थलों का उल्लेख भी मिलता है। उदाहरणस्वरूप-

''काशिये गया गोकुले मथुरा
आत्मार भितरे आसे
ब्रह्म हरिहर कृष्ण बलोभद्र
आत्मार भितरे आसे''[5]

2. शुद्ध और पवित्र जीवन यापन का संदेश :

नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति जिकिरों में दिख पड़ती है। इनमें आत्मसंयम की बात कही गई है। शारीरिक इंद्रियों को वश में करने पर ही मानव शुद्ध और पवित्र जीवन यापन कर सकता है। ये इंद्रियाँ ही ईश्वर मार्ग में बाधक हैं, क्योंकि ये मन को विचलित करती हैं। जिकिरों में इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है-

''मनको छाटिबा मनको बांधिबा
मनको निदिबा लाइ
दुर्जन मनको बुजाब नोवारो
जेने गजमूरी गाइ।''[6]

(अर्थात- मन की बुराइयों को छाँटना, मन को बाँधना। मन को बढ़ावा मत दो। दुर्जन मन सिंग वाली गाय जैसा होता है, जो किसी की बात नहीं मानता।)

4. सामाजिक भेदभाव मिटाकर समरसता का संदेश :

जिकिरों में जातिगत भेदभाव को मिटाने का संदेश ध्वनित हुआ है। समाज में शांति, एकता तथा सामाजिक समरसता तभी स्थापित हो सकती है, जब जातिगत विषमता को खत्म किया जाएगा। निम्नलिखित जिकिर में समाज की समरसता का सुंदर संदेश मिलता है-

''मोर मनत आन भाव नाइ ओ आल्ला
मोर मनत नाइ आन भाव
हिन्दू कि मुसलमान एके आल्लार नाम।''[7]

(अर्थात-मेरे मन में कोई भेदभाव नहीं है, मेरे लिए हिंदू और मुसलमान एक ही अल्लाह के नाम हैं।)

एक और जिकिर में तत्कालीन समय की सामाजिक समरसता का सुंदर निदर्शन मिलता है-

''हाजोरे मोकामत उरूमि लागिसे
चिगिल कामायानर जरी।
हिन्दुवे बिलाले माहे परसादे
मुसलमाने बिलाले रूटी।''[8]

(अर्थात-हाजो का स्थान उरूमि यानी कबूतरों की आवाज से गुँजरित है। धर्म का बंधन टूट गया है। हिंदुओं ने प्रसाद बाँटा और मुसलमानों ने रोटी बाँटी।)

भले ही दोनों धर्मों की रीति-नीतियाँ भिन्न हों, परंतु मूल में आत्मा तथा परमात्मा का मिलन ही है। यही भावना निम्नलिखित जिकिर में अभिव्यक्त हो रहा है-

''हिन्दूक ज्वालाब हाय अ अल्ला,
मूछ्लमान क गाड़िब हाय अ अल्ला,
हाय अ एकेखन जमिनर तल।''

(अर्थात-मृत्यु के बाद हिंदू को जलाया जाएगा और मुसलमान को मिट्टी में गाड़ दिया जाएगा।)

जिकिर की इन पंक्तियों में मानव जीवन के परम सत्य की ओर संकेत किया गया है कि मानव जीवन का अंत एक ही जमीन में समाप्त होना है। जीवन जीने के समय वह ऊँच-नीच, जाति-पाति के भेदभाव से घिरा रहता है। लेकिन जीवनोपरांत वह एक जमीन में मिल जाता है।

3. समाज में ऐश्वरीय महत्व का प्रसार :

असमिया समाज में ईश्वर या ऐश्वरीय शक्ति के प्रति एक आस्था दिखाई पड़ती है। श्रीमंत शंकरदेव तथा माधवदेव द्वारा रचित बरगीतों में भी अध्यात्मिकता दिखाई पड़ती है। अजान फकीर ने जिकिरों की रचना श्रीमंत शंकरदेव तथा माधवदेव कृत बरगीतों तथा कीर्तन, नाम घोषा से प्रेरित होकर की थी। अत: जिकिरों में भी आध्यात्मिक तत्व तथा ईश्वर के प्रति आस्था दिखाई पड़ती है। यथा-

''आल्लार बिनेकेउ नाई आन ऊ आल्ला हे।''[9]

(अर्थात-अल्लाह यानी ईश्वर के सिवाय अन्य कोई दूसरा नहीं है।)

जिकिर में यह भी कहा गया है कि जिसने ईश्वर भक्ति नहीं की, उसका जनम विफल है। उदाहरणस्वरूप-

''अभकति प्राण, जनम बिफले जाय।''[10]

(अर्थात-जिस प्राण में अभक्ति हो, उनका जन्म विफल है।)

जिकिरों में संसार की क्षणभंगुरता की ओर संकेत किया गया है। इस दुनिया में अगर कुछ सत्य है तो वह है-ईश्वर। वही परम तत्व है। इस दुनिया को फूलों का बगीचा कहा जाता है, जिसमें लोग मंत्र-मुग्ध हो स्वयं को भुला देते हैं। परंतु संसार रूपी फूल आज है तो कल मुरझा जाएगा। परंतु ईश्वर सत्य है। वह अक्षय है। निम्नलिखित जिकिर में इसी की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गई है-

''हाय हाय अ दुनिया एदिनर बांदा अ', दुनिया दूदिनर
दुनिया फुलनि बारी, (हे आल्ला)
कतक चले बले कर तई दुनियात
धारिव खेवाली मारि हे बांदा
ल तई आल्लारे नाम।''[11]

4. नाम स्मरण की प्रधानता :

शंकरदेव के एकशरणीय धर्म का मूलमंत्र 'एक देव एक सेव एक बीने नाहीं केव' का सार तत्व अजान फकीर के जिकिरों में भी ध्वनित होता है। अफान फकीर सूफी थे। सूफीवाद में निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना की जाती है, जिसमें नाम स्मरण प्रमुख होता है। अजान फकीर जब असम आए, तब समाज में शंकरदेव के एकशरण धर्म का प्रभाव अत्यधिक था। फलस्वरूप अजान फकीर के एकेश्वरवाद के प्रचार में शंकरदेव के एकशरण धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनके द्वारा रचित जिकिरों में शंकरदेव के धर्म-दर्शन का प्रभाव कई क्षेत्रों में परिलक्षित होता है। जैसे-नाम कीर्तन पद्धति का प्रभाव, प्रस्तुतिकरण का प्रभाव, दर्शन का प्रभाव, नाम कीर्तन के सूर का प्रभाव आदि। तत्कालीन असमिया समाज के प्रचलित नाम स्मरण की प्रधानता जिकिर में दिख पड़ता है। उदाहरणस्वरूप-

''केवल नामे केवल नाम, केवल नामे रती
दिने-राति लबा नाम नकरिबा खटि
केवल नामे केवल नाम, केवल नामे सार
दूसकू मुदिले बांदार दिनते आंधार''[12]

(अर्थात-केवल नाम केवल नाम केवल नाम ही रटना है। दिन-रात नाम लेना, मत करना कमी। केवल नाम, केवल नाम ही सार है। दो आँखें बंद होते ही दुनिया अंधेरा है।)

नाम स्मरण ही मानव को मानसिक प्रशांति प्रदान कर सकता है। मनुष्य मुक्ति का मार्ग भी ईश्वर के नाम स्मरण में ही निहित है। बरगीत में कहा गया है- *''नामे परम धन चिंतहू भाई''*[13]

(अर्थात ईश्वर नाम ही मानव जीवन का परम धन है, सभी भाई ईश्वर नाम लो)।

ठीक उसी प्रकार जिकिर में भी नाम स्मरण की प्रधानता देते हुए लिखा गया है-*''कलिमाहे बरधन कलिमाहे सार''*[14] (अर्थात-कलिमा, जिसमें ईश्वर के नाम का स्मरण किया जाता है ही सबसे बड़ा धन है, वही जीवन का सार है।)

5. सद्‌गुरु की महिमा :

जिकिरों में सद्‌गुरु का वर्णन है, जो जीवन के पथ-प्रदर्शक हैं। सद्‌गुरु से तात्पर्य है- अल्लाह की वाणियों का प्रचार करने वाले पीर-औलिया। जन्म ग्रहण करके इस संसार में आने के बाद मनुष्य माया-मोह में भटक कर सही मार्ग भूल जाता है। उदाहरणस्वरूप-

''दुनियालै अहिलो जे रंगे रसे बेहालु जे
नेबेहालु मानिकर हाट
अमयार माधुरी पाई मुर्सीदलै मनत नाइ
नूशुनिलो सतगुरूर मात।''[15]

(अर्थात-इस संसार में आकर सांसारिक रंग-रस में डूबकर ईश्वर का नाम ही भूल गए। सांसारिक प्रेम और मधुरता पाकर मार्गदर्शक को भी याद नहीं रखा। हमने सतगुरु की वाणी को भी अनसुना किया।)

सद्‌गुरु की महिमा का वर्णन एक अन्य जिकिर में इस प्रकार किया गया है-

''जीवर सारथि नाम ऊ अल्ला
जीवर सारथि नाम,
सत गुरुक भेंटिबा आत्माक चिनिबा
सिजिब दिनरे काम''[16]

(अर्थात-अल्लाह यानी ईश्वर का नाम ही जीवन का सारथि है। उनका नाम ही जीव का सारथि है। सद्‌गुरु को मिलने तथा आत्मा को पहचानने की बात कही गई है। तभी इस संसार में आना सफल होगा।)

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि जिकिर असमिया भक्तिवादी लोक-साहित्य का एक प्रमुख उपादान है। यह इस्लामी सूफी विचारों और असमिया लोक-संस्कृति मिश्रित रूप है। आध्यात्मिक तत्वों से परिवेष्टित जिकिर में भातृत्व प्रेम तथा मानवतावाद की भावना परिलक्षित होती है, जो समाज में एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिकिरों के माध्यम से धार्मिक वैषम्यता को दूर कर मानवतावाद, प्रेम, करुणा और भाईचारे पर बल दिया गया है। मनुष्य स्वयं को हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई के रूप में अपना परिचय देकर ऊँच-नीच की भावना सृष्टि स्वयं करता है। जिकिर में मानव-प्रेम मुखरित होता है, जिससे समाज में शांति, एकता और सामाजिक समरसता स्थापित किया जा सकता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. हुसैन, इस्माइल, आजान पीर आरु जिकिर-जारीर मूल्यांकन, पृ. संख्या-17, ज्योति प्रकाशन, जसवंत रोड, पान बाजार, गुवाहाटी-781008
2. गयचौधुरी, भूपेंद्र नाथ, असमिया लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या-31, श्रीप्रदीप चंद्र शर्मा, भारती प्रकाश, रेहाबाड़ी, गुवाहाटी-781008, (विक्रमाब्द)
3. गोस्वामी लोकनाथ, असमीया लोकगीत सम्भार, पृष्ठ संख्या- 160, देवेन कलिता, रेखा प्रकाशन, पान बजार, गुवाहाटी-1, 2016
4. हुसैन, इस्माइल, आजान पीर आरु जिकिर-जारीर मूल्यांकन, पृ. संख्या-34, ज्योति प्रकाशन, जसवंत रोड, पान बाजार, गुवाहाटी
5. गोस्वामी लोकनाथ, असमीया लोकगीत सम्भार, पृष्ठ संख्या- 160, देवेन कलिता, रेखा प्रकाशन, पान बजार, गुवाहाटी-1, 2016
6. हुसैन, इस्माइल, आजान पीर आरु जिकिर-जारीर मूल्यांकन, पृ. संख्या-140, ज्योति प्रकाशन, जसवंत रोड, पान बाजार, गुवाहाटी
7. हुसैन, इस्माइल, आजान पीर आरु जिकिर-जारीर मूल्यांकन, पृ. संख्या-78, ज्योति प्रकाशन, जसवंत रोड, पान बाजार, गुवाहाटी
8. हुसैन, इस्माइल, आजान पीर आरु जिकिर-जारीर मूल्यांकन, पृ. संख्या-78, ज्योति प्रकाशन, जसवंत रोड, पान बाजार, गुवाहाटी
9. गोस्वामी लोकनाथ, असमीया लोकगीत सम्भार, पृष्ठ संख्या- 163, देवेन कलिता, रेखा प्रकाशन, पान बजार, गुवाहाटी-1, 2016
10. आजान फकीरर जिकिर-जारी(सं), पृष्ठ संख्या- 46, संग्राहक-अब्दुल जब्बार बुक सेलर्स, फल बाजार, डिब्रूगढ़, प्रथम प्रकाशन-2012
11. गोस्वामी लोकनाथ, असमीया लोकगीत सम्भार, पृष्ठ संख्या- 160, देवेन कलिता, रेखा प्रकाशन, पान बजार, गुवाहाटी-1, 2016
12. आजान फकीरर जिकिर-जारी(सं), पृष्ठ संख्या- 9, संग्राहक-अब्दुल जब्बार बुक सेलर्स, फलबाजार, डिब्रूगढ़, प्रथम प्रकाशन-2012
13. हुसैन, इस्माइल, आजान पीर आरु जिकिर-जारीर मूल्यांकन, पृ. संख्या-40, ज्योति प्रकाशन, जसवंत रोड, पान बाजार, गुवाहाटी
14. हुसैन, इस्माइल, आजान पीर आरु जिकिर-जारीर मूल्यांकन, पृ. संख्या-40, ज्योति प्रकाशन, जसवंत रोड, पान बाजार, गुवाहाटी
15. आजान फकीरर जिकिर-जारी(सं), पृष्ठ संख्या- 12, संग्राहक-अब्दुल जब्बार बुक सेलर्स, फल बाजार, डिब्रूगढ़, प्रथम प्रकाशन-2012
16. हुसैन, इस्माइल, आजान पीर आरु जिकिर-जारीर मूल्यांकन, पृ. संख्या-33, ज्योति प्रकाशन, जसवंत रोड, पान बाजार, गुवाहाटी

सहायक ग्रंथ :

1. अली, मो. केरामत, श्रीमंत शंकरदेव आरु हजरत आजान पीर जीवन आरु वाणी, चतुर्थ प्रकाशन, 2018, दारुल हिकमत, दक्षिण गाँव, काहिलीपाड़, गुवाहाटी